

Chapter छह

यदुवंश का प्रभास गमन

इस अध्याय में बतलाया गया है कि किस तरह ब्रह्मा तथा अन्य देवताओं ने श्रीकृष्ण की स्तुति करने के बाद उनसे अपने धाम लौट जाने के लिए अनुरोध किया और किस तरह भगवान् से वियोग

की पूर्व कल्पना करके उद्धव अत्यन्त दुखी हुए और कृष्ण से प्रार्थना करने लगे कि वह भी उनके साथ भगवद्धाम लौट जाना चाहता है।

श्रीकृष्ण को उनके सर्वमोहक मनुष्य रूप में देखने की इच्छा से सारे गन्धर्व, अप्सरा, नाग, ऋषि, पितरगण, विद्याधर, किन्नर एवं ब्रह्मा, शिव, इन्द्र इत्यादि अन्य देवता द्वारका नगरी आये। उन्होंने स्वर्ग के नन्दनकानन से चुने हुए फूलों की मालाएँ कृष्ण को पहनाते हुए उनकी दिव्य शक्ति तथा गुणों का बखान करते हुए, उनकी प्रशंसा की।

ब्रह्मा इत्यादि सारे जीव भगवान् श्रीकृष्ण के अधीन हैं। कृष्ण अपने अंश महाविष्णु को शक्ति प्रदान करके ब्रह्माण्ड का सृजन करते हैं। यद्यपि कृष्ण अपनी भौतिक शक्ति से इस संसार का सृजन, पालन और संहार करते हैं, किन्तु वे भौतिक शक्ति से परे रहते हैं और पूर्णतया आत्मतुष्ट रहते हैं। वे अपनी सोलह हजार रानियों के बीच में रहकर भी उद्विग्न नहीं होते।

सकाम यज्ञों के करने वाले तथा योगशक्ति के इच्छुक योगीजन अपने भौतिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए श्रीकृष्ण के चरणकमलों का ध्यान करते हैं। किन्तु अत्यन्त बड़े-चढ़े भक्तगण, जो भौतिक कर्म के बन्धन से मुक्ति की कामना करते हैं, भगवान् के चरणकमलों का प्रेमपूर्वक ध्यान करते हैं, क्योंकि वे चरणकमल अग्नि तुल्य हैं, जो समस्त इन्द्रिय-तृप्ति की इच्छाओं को नष्ट करने वाली है। कोई व्यक्ति सामान्य पूजा, तप तथा ऐसी ही अन्य विधियों से मन को शुद्ध नहीं बना सकता। इन्द्रिय-तृप्ति द्वारा कलुषित मन को सतोगुण में प्रौढ़ विश्वास द्वारा ही शुद्ध किया जा सकता है, जो कि कृष्ण की महिमा के श्रवण से उत्पन्न होता है। इसलिए वर्णाश्रम प्रणाली में स्थित बुद्धिमान व्यक्ति दो प्रकार के तीर्थस्थलों की सेवा करते हैं—वे हैं कृष्ण-कथा की अमृतमयी नदियाँ तथा भगवान् के चरणकमलों से बहने वाली अमृतमयी नदियाँ।

कृष्ण ने यदुवंश में अवतार लेकर अपनी दिव्य लीलाओं का प्रदर्शन करके सारे ब्रह्माण्ड के लिए सर्वोच्च मंगलकारी कार्य किया। इन लीलाओं के श्रवण तथा कीर्तन मात्र से कलियुग में पवित्र व्यक्ति भौतिक मोह के सागर को अवश्यमेव पार कर लेते हैं। जब भगवान् ने अपने अवतार के प्रयोजन को पूरा कर लिया और यदुवंश ब्राह्मणों के शाप से आसन्न विनाश का सामना कर रहा था, तो भगवान् ने अपनी लीलाओं को समेट लेना चाहा। जब ब्रह्मा ने अपने तथा अन्य देवताओं के उद्धार हेतु भगवान्

कृष्ण के चरणकमलों में प्रार्थना की, तो उत्तर में कृष्ण ने यही कहा कि यदुवंश के विनाश के पश्चात्, वे अपने धाम लौट जायेंगे।

संसार के आसन्न संहार के सूचक भीषण उपद्रवों को देखकर कृष्ण ने यदुवंश के चतुर सदस्यों को बुलाकर, उन्हें ब्राह्मणों के शाप का स्मरण कराया। भगवान् ने उन्हें प्रभास-तीर्थ जाने के लिए राजी किया, जहाँ वे औपचारिक स्नान, दान इत्यादि सम्पन्न करके अपने को बचा सकेंगे। कृष्ण की इच्छा का पालन करते हुए यदुओं ने प्रभास की यात्रा करने के लिए तैयारी की।

यदुवंश के साथ कृष्ण की वार्ता को देख-सुनकर उद्धव एकान्त में श्रीकृष्ण से मिले, उन्हें पूर्ण नमस्कार किया और हाथ जोड़ कर भगवान् के विछोह को सहन न कर पाने की अक्षमता व्यक्त की। उन्होंने उनसे याचना की कि वे उन्हें भी अपने धाम ले चलें।

यदि कोई व्यक्ति कृष्ण की लीलाओं का अमृत-आस्वादन अपने कानों से कर लेता है, तो वह अन्य वस्तुओं के लिए लालायित नहीं रहता। जो व्यक्ति खाते, खेलते, सोते, बैठते कृष्ण की सेवा में लगातार लगे रहते हैं, वे कृष्ण का वियोग सहन नहीं कर पाते। वे श्रीकृष्ण के सभी प्रकार के जूठन का आदर करते हैं और इस तरह भगवान् की माया को जीत लेते हैं। संन्यास आश्रम के शान्ति-प्रिय सदस्य कठोर एवं कष्टप्रद तपस्या के बाद ही ब्रह्मलोक को प्राप्त करते हैं, जबकि भगवद्भक्त कृष्ण की विभिन्न लीलाओं और उपदेशों की परस्पर चर्चा, कीर्तन तथा स्मरण करके अपने आप दुर्लभ माया को पार कर जाते हैं।

श्रीशुक उवाच

अथ ब्रह्मात्मजैः देवैः प्रजेशैरावृतोऽभ्यगात् ।

भवश्च भूतभव्येशो ययौ भूतगणैर्वृतः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; अथ—तब; ब्रह्मा—ब्रह्मा; आत्म-जैः—अपने पुत्रों (सनक इत्यादि) द्वारा; देवैः—देवताओं द्वारा; प्रजा-ईशैः—प्रजापतियों (मरीचि इत्यादि) द्वारा; आवृतः—घिरा हुआ; अभ्यगात्—(द्वारका) गये; भवः—शिवजी; च—भी; भूत—सारे जीवों को; भव्य-ईशः—कल्याणप्रदाता; ययौ—गये; भूत गणैः—भूत-प्रेतों के झुँड से; वृतः—घिरे।

श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा : तब ब्रह्माजी अपने पुत्रों तथा देवताओं एवं महान् प्रजापतियों को साथ लेकर द्वारका के लिए रवाना हुए। सारे जीवों के कल्याणप्रदाता शिवजी भी अनेक भूत-प्रेतों से घिर कर द्वारका गये।

इन्द्रो मरुद्भिर्भगवानादित्या वसवोऽश्विनौ ।
 ऋभवोऽङ्गिरसो रुद्रा विश्वे साध्याश्च देवताः ॥ २ ॥
 गन्धर्वाप्सरसो नागाः सिद्धचारणगुह्यकाः ।
 ऋषयः पितरश्चैव सविद्याधरकिन्नराः ॥ ३ ॥
 द्वारकामुपसङ्गम्: सर्वे कृष्णादिदृक्षवः ।
 वपुषा येन भगवान्नरलोकमनोरमः ।
 यशो वितेने लोकेषु सर्वलोकमलापहम् ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

इन्द्रः—इन्द्र; मरुद्भिः—वायु-देवों के साथ; भगवान्—शक्तिशाली नियन्ता; आदित्याः—बारह मुख्य देवता, जो कि अदिति के पुत्र हैं; वसवः—आठ वसु देवता; अश्विनौ—दो अश्विनी कुमार; ऋभवः—तथा ऋभुगण; अङ्गिरसः—अंगिरा मुनि के वंशज; रुद्राः—शिवजी के अंश; विश्वे साध्याः—विश्वेदेवा तथा साध्य के नाम से विख्यात; च—भी; देवताः—अन्य देवता; गन्धर्व-अप्सरसः—स्वर्गलोक के गवैये तथा नर्तकियाँ; नागाः—दैवी सर्प; सिद्ध-चारण—सिद्धगण तथा चारणगण; गुह्यकाः—तथा पिशाच; ऋषयः—ऋषिगण; पितरः—पूर्वज; च—भी; एव—निस्सन्देह; स—सहित; विद्याधर-किन्नराः—विद्याधर तथा किन्नरगण; द्वारकाम्—द्वारका; उपसङ्गम्:—साथ पहुँचे; सर्वे—सभी; कृष्णा-दिदृक्षवः—कृष्ण को देखने के लिए उत्सुक; वपुषा—दिव्य शरीर से; येन—जो; भगवान्—भगवान्; नर-लोक—समस्त मानव समाज को; मनः-रमः—मोहने वाला; यशः—यश; वितेने—विस्तार किया; लोकेषु—सारे ब्रह्माण्ड-भर में; सर्व-लोक—सारे लोकों में; मल—अशुद्धियाँ; अपहम्—जो समूल नष्ट करती है।

कृष्ण का दर्शन करने की आशा से शक्तिशाली इन्द्र अपने साथ मरुतों, आदित्यों, वसुओं, अश्विनियों, ऋभुओं, अंगिराओं, रुद्रों, विश्वेदेवों, साध्यों, गन्धर्वों, अप्सराओं, नागों, सिद्धों, चारणों, गुह्यकों, महान् ऋषियों, पितरों तथा विद्याधरों एवं किन्नरों को लेकर द्वारका नगरी पहुँचे। कृष्ण ने अपने दिव्य स्वरूप द्वारा सारे मनुष्यों को मोह लिया और समस्त जगतों में अपनी महिमा फैला दी। भगवान् का यश ब्रह्माण्ड के भीतर समस्त कल्मष को नष्ट करने वाला है।

तात्पर्य : देवताओं की विराट व्यवस्था में हाथ बटाने के लिए भगवान् भौतिक जगत में अवतरित होते हैं। इसलिए देवतागण सामान्यतया भगवान् के उपेन्द्र जैसे रूपों को देख सकते हैं। किन्तु यहाँ यह इंगित किया गया है कि देवतागण यद्यपि भगवान् के विविध विष्णु-रूपों को देखने के अभ्यस्त थे, किन्तु वे भगवान् के सबसे सुन्दर कृष्ण स्वरूप को देखने के लिए विशेष रूप से उत्सुक थे। देह-देहि-विभागश्च नेश्वरे विद्यते क्वचित्—भगवान् तथा उनके निजी शरीर में कोई अन्तर नहीं है। जीवात्मा उनके शरीर से भिन्न है, किन्तु भगवान् का सुन्दर दिव्य रूप सभी प्रकार से भगवान् से अभिन्न है।

तस्यां विभ्राजमानायां समृद्धायां महर्द्धिभिः ।
 व्यचक्षतावितृप्ताक्षाः कृष्णमद्भुतदर्शनम् ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

तस्याम्—उस (द्वारका) में; विभ्राजमानायाम्—सुशोभित; समृद्धायाम्—अत्यन्त धनी; महा-ऋद्धिभिः—महान् ऐश्वर्य से; व्यचक्षत—उन्होंने देखा; अविर्तुप्त—असन्तुष्ट; अक्षाः—नेत्रों वाले; कृष्णम्—कृष्ण को; अद्भुत-दर्शनम्—आश्चर्ययुक्त होकर देखना।

समस्त प्रकार के श्रेष्ठ ऐश्वर्यों से समृद्ध उस द्वारका की सुशोभित नगरी में देवताओं ने श्रीकृष्ण के अद्भुत रूप को अतृप्त नेत्रों से देखा।

स्वर्गोद्यानोपगैर्माल्यैश्छादयन्तो युदूत्तमम् ।
गीर्भिश्चित्रपदार्थाभिस्तुष्टुवुर्जगदीश्वरम् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

स्वर्ग-उद्यान—देवताओं के स्वर्गलोक के बगीचों से; उपगैः—प्राप्त किया गया; माल्यैः—फूल की मालाओं से; छादयन्तः—ढकते हुए; यदु-उत्तमम्—यदुश्रेष्ठ; गीर्भिः—वाणी से; चित्र—मोहक; पद-अर्थाभिः—जिससे युक्त शब्दों तथा विचारों से; तुष्टुवुः—प्रशंसा की; जगत्-ईश्वरम्—ब्रह्माण्ड के स्वामी को।

देवताओं ने समस्त ब्रह्माण्डों के परम स्वामी को स्वर्ग के उद्यानों से लाये गये फूलों के हारों से ढक दिया। तब उन्होंने यदुवंश शिरोमणि भगवान् की मोहक शब्दों तथा भावमय वचनों से प्रशंसा की।

श्रीदेवा ऊचुः

नताः स्म ते नाथ पदारविन्दं
बुद्धीन्द्रियप्राणमनोवचोभिः ।
यच्चिन्त्यतेऽन्तर्हृदि भावयुक्तैर्
मुमुक्षुभिः कर्ममयोरुपाशात् ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

श्री-देवाः ऊचुः—देवताओं ने कहा; नताः स्म—हम नतमस्तक हैं; ते—तुम्हारे; नाथ—हे स्वामी; पद-अरविन्दम्—चरणकमलों को; बुद्धि—अपनी बुद्धि से; इन्द्रिय—इन्द्रियाँ; प्राण—प्राण-वायु; मनः—मन; वचोभिः—तथा शब्दों से; यत्—जो; चिन्त्यते—चिन्तन किये जाते हैं; अन्तः हृदि—हृदय के भीतर; भाव-युक्तैः—योगाभ्यास में स्थिर चित्त वालों को; मुमुक्षुभिः—मुक्ति के लिए प्रयत्नशीलों के द्वारा; कर्म-मय—सकाम कर्म के फलों के; ऊरु-पाशात्—महान् बन्धन से।

देवता कहने लगे : हे प्रभु, बड़े बड़े योगी कठिन कर्म-बन्धन से मुक्ति पाने का प्रयास करते हुए अपने हृदयों में आपके चरणकमलों का ध्यान अतीव भक्तिपूर्वक करते हैं। हम देवतागण अपनी बुद्धि, इन्द्रियाँ, प्राण, मन तथा वाणी आपको समर्पित करते हुए, आपके चरणकमलों पर नत होते हैं।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी के अनुसार इस श्लोक का स्म शब्द विस्मय का सूचक है। देवता इसलिए चकित थे, क्योंकि बड़े बड़े योगी अपने हृदयों के भीतर ही भगवान् के चरणकमलों का

चिन्तन कर पाते हैं, किन्तु द्वारका आने पर देवतागण अपने समक्ष भगवान् के सम्पूर्ण शरीर को देख सके। इसलिए शक्तिशाली देवताओं ने भगवान् को दण्डवत् प्रणाम किया। ऐसे दण्डवत् प्रणाम का वर्णन नीचे किया गया है—

दोर्ध्या पदाभ्यां जानुभ्याम्

उरसा शिरसा दृशा ।

मनसा वचसा चेति

प्रणामोऽष्टाङ्ग ईरितः ॥

“आठ अंगों से किये जाने वाले प्रणाम (साष्टाङ्ग प्रणाम) में दो बाहें, दो पाँव, दो घुटने, वक्षस्थल, सिर, आँखें, मन तथा वाक्शक्ति शामिल रहती हैं।”

भौतिक प्रकृति की धाराएँ अत्यन्त प्रबल हैं और इसलिए मनुष्य को चाहिए कि मजबूती से भगवान् के चरणकमलों से चिपक जाय। अन्यथा इन्द्रिय-तृप्ति एवं मानसिक चिन्तन की उग्र लहरें मनुष्य को उसकी स्वाभाविक स्थिति से, जो कि भगवान् के प्रेमी दास के रूप में है, दूर बहा ले जायेंगी और मनुष्य उरु-पाशात् जैसे कठोर बन्धन में गिर जायेगा।

त्वं मायया त्रिगुणयात्मनि दुर्विभाव्यं

व्यक्तं सृजस्यवसि लुम्पसि तद्गुणस्थः ।

नैतैर्भवानजित कर्मभिरज्यते वै

यत्स्वे सुखेऽव्यवहितेऽभिरतोऽनवद्यः ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

त्वम्—तुम; मायया—भौतिक शक्ति द्वारा; त्रि-गुणया—तीन गुणों से निर्मित; आत्मनि—अपने भीतर; दुर्विभाव्यम्—अचिन्त्य; व्यक्तम्—प्रकट जगत; सृजसि—उत्पन्न करते हो; अवसि—रक्षा करते हो; लुम्पसि—तथा संहार करते हो; तत्—उस प्रकृति का; गुण—गुणों (सतो, रजो तथा तमो) के भीतर; स्थः—स्थित; न—नहीं; एतैः—इनके द्वारा; भवान्—आप; अजित—हे अजेय स्वामी; कर्मभिः—कर्मों से; अज्यते—फँस जाते हैं; वै—तनिक; यत्—क्योंकि; स्वे—अपने; सुखे—सुख में; अव्यवहिते—बिना किसी रोक के; अभिरतः—सदैव लीन रहते हो; अनवद्यः—दोषरहित प्रभु।

हे अजित प्रभुक, आप तीन गुणों से बनी अपनी मायाशक्ति को अपने ही भीतर अचिन्त्य व्यक्त जगत के सृजन, पालन तथा संहार में लगाते हैं। आप माया के परम नियन्ता के रूप में प्रकृति के गुणों की अन्योन्य क्रिया में स्थित जान पड़ते हैं, किन्तु आप भौतिक कार्यों द्वारा कभी प्रभावित नहीं होते। आप अपने नित्य आध्यात्मिक आनन्द में ही लगे रहते हैं, अतएव आप पर किसी भौतिक संदूषण का दोषारोपण नहीं किया जा सकता।

तात्पर्य : यहाँ *दुर्विभाव्यम्* शब्द महत्त्वपूर्ण है। संसार के सृजन तथा संहार का अन्तिम कारण बड़े बड़े संसारी विज्ञानियों के लिए भी अचिन्त्य है, जो अपना जीवन व्यर्थ तथा निष्फल चिन्तन में बिताते हैं। फिर भी महाविष्णु, जो भगवान् कृष्ण के अंश के गौण अंश हैं, सारे ब्रह्माण्ड को तुच्छ परमाणु के समान देखते हैं। अतः जो मूर्ख तथाकथित वैज्ञानी, कृष्ण को अपनी हास्यास्पद प्रयोग-शक्ति द्वारा समझने का प्रयास करते हैं, उनसे क्या आशा की जा सकती है? इसीलिए *अनवद्य* शब्द प्रयुक्त हुआ है। कोई भी व्यक्ति भगवान् के शरीर, चरित्र, कार्य या आदेशों में कोई त्रुटि या दोष नहीं निकाल सकता। भगवान् कभी भी भौतिकता से अनजान नहीं हैं इसलिए वे कभी भी क्रूरता, आलस्य, मूर्खता, अन्धता या भौतिक नशे का प्रदर्शन नहीं करते। इसी तरह चूँकि भगवान् कभी भी भौतिक काम-वासना से दूषित नहीं होते इसलिए उनमें कभी भी गर्व, शोक, कामना या हिंसा प्रदर्शित नहीं होते और चूँकि भगवान् भौतिक गुणों से रहित हैं, वे कभी भी उच्च भौतिकतावादी मनोवृत्ति से भौतिक जगत का शान्तिपूर्वक भोग करने का प्रयास नहीं करते।

जैसाकि यहाँ पर कहा गया है (*स्वे सुखेऽव्यवहितेऽभिरतः*) कृष्ण अपने दिव्य धाम में अहर्निश अपने असंख्य संगियों की अचिन्त्य प्रेमाभक्ति का आस्वादन करने में व्यस्त रहते हैं। वे उनका आलिंगन करते हैं और संगी उनका आलिंगन करते हैं। वे अपने प्रियजनों के साथ हँसी-मजाक करते हैं और वे उनकी हँसी-मजाक सुनते हैं। भगवान् फूलों तथा फलों से लदे जंगलों में विचरते हैं, अमृत-तुल्य यमुना नदी में क्रीड़ा करते हैं और वृन्दावन की गोपियों के साथ गोपनीय एवं दिव्य प्रेमालाप करते हैं। कृष्ण-लोक तथा अन्य वैकुण्ठ-लोकों में ये लीलाएँ नित्य, त्रुटिरहित हैं तथा दिव्य सुख की सागर हैं। भगवान् कभी भी भौतिक सुख के शुष्क धरातल पर नहीं आते। भगवान् को किसी से कुछ लेना नहीं, अतएव भगवान् में सकाम कर्म विद्यमान नहीं रह सकता।

शुद्धिर्नृणां न तु तथेड्य दुराशयानां

विद्याश्रुताध्ययनदानतपःक्रियाभिः ।

सत्त्वात्मनामृषभ ते यशसि प्रवृद्ध-

सच्छ्रद्धया श्रवणसम्भृतया यथा स्यात् ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

शुद्धिः—शुद्धि; नृणाम्—मनुष्यों की; न—नहीं; तु—लेकिन; तथा—इस तरह; ईड्य—हे पूज्य; दुराशयानाम्—उनके, जिनकी चेतना कलुषित है; विद्या—सामान्य पूजा द्वारा; श्रुत—वेदों का श्रवण तथा उनके आदेशों का पालन; अध्ययन—विभिन्न शास्त्रों

का अध्ययन; दान—दान; तपः—तपस्या; क्रियाभिः—तथा अनुष्ठानों द्वारा; सत्त्व-आत्मनाम्—सतो गुणियों के; ऋषभ—हे सर्वश्रेष्ठ; ते—तुम्हारे; यशसि—यश में; प्रवृद्ध—पूर्णतया परिपक्व; सत्—दिव्य; श्रद्धया—श्रद्धा द्वारा; श्रवण-सम्भृतया—सुनने की विधि से पुष्ट हुआ; यथा—जिस तरह; स्यात्—है।

हे सर्वश्रेष्ठ, जिनकी चेतना मोह से कलुषित है, वे केवल सामान्य पूजा, वेदाध्ययन, दान, तप तथा अनुष्ठानों द्वारा अपने को शुद्ध नहीं कर सकते। हमारे स्वामी, जिन शुद्ध आत्माओं ने आपके यश के प्रति दिव्य प्रबल श्रद्धा उत्पन्न कर ली है, उन्हें ऐसा शुद्ध जन्म प्राप्त होता है, जो ऐसी श्रद्धा से रहित लोगों को कभी प्राप्त नहीं हो पाता।

तात्पर्य : यदि शुद्ध भक्त में वेदाध्ययन तथा तपस्या जैसे गुणों का अभाव रहे भी, किन्तु यदि वह भगवान् कृष्ण में दृढ़ श्रद्धा रखता हो, तो भगवान् उसकी भक्ति के कारण उसे बचा लेंगे। दूसरी ओर, यदि मनुष्य अपने भौतिक गुणों से, जिनमें दया भी सम्मिलित है, मिथ्या तौर पर गर्वित हो उठे, किन्तु कृष्ण के यशोगान तथा श्रवण में रुचि न ले, तो उसका प्रयास निष्फल होगा। दिव्य आत्मा को भौतिक दया, दान या पाण्डित्य की किसी भी मात्रा द्वारा शुद्ध नहीं किया जा सकता। केवल दिव्य भगवान् ही अपने अन्तर से अपनी दया का दान देकर दिव्य जीव को शुद्ध कर सकते हैं। देवतागण उनके सौभाग्य से चकित थे। कृष्ण का श्रवण करने मात्र से ही मनुष्य को सारी सिद्धि मिल सकती है, किन्तु वे भगवान् की पुरी में प्रविष्ट हो चुके थे और भगवान् को अपने समक्ष खड़े देख रहे थे।

स्यान्नस्तवाङ्घ्रिरशुभाशयधूमकेतुः

क्षेमाय यो मुनिभिरार्द्रहृदोह्यमानः ।

यः सात्वतैः समविभूतय आत्मवद्भिर्

व्यूहेऽर्चितः सवनशः स्वरतिक्रमाय ॥ १० ॥

शब्दार्थ

स्यात्—वे हों; नः—हमारे लिए; तव—तुम्हारे; अङ्घ्रिः—चरणकमल; अशुभ-आशय—हमारी अशुभ मनोवृत्ति के; धूम-केतुः—प्रलयकारी अग्नि; क्षेमाय—असली लाभ पाने के लिए; यः—जो; मुनिभिः—मुनियों द्वारा; आर्द्र-हृदा—पिघले हृदयों से; उह्यमानः—ले जाये जा रहे हैं; यः—जो; सात्वतैः—भगवान् के भक्तों द्वारा; सम-विभूतये—उनके ही जैसा ऐश्वर्य पाने के लिए; आत्म-वद्भिः—आत्मसंयमियों के द्वारा; व्यूहे—वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध इन चार स्वांशों द्वारा; अर्चितः—पूजित; सवनशः—प्रत्येक दिन की तीन संधियों पर; स्वः—अतिक्रमाय—इस जगत के स्वर्ग से परे जाने के लिए।

जीवन में सर्वोच्च लाभ की कामना करने वाले बड़े बड़े मुनि अपने उन हृदयों के भीतर सदैव आपके चरणकमलों का स्मरण करते हैं, जो आपके प्रेम में द्रवित हैं। इसी तरह आपके आत्मसंयमी भक्तगण, आपके ही समान ऐश्वर्य पाने के लिए स्वर्ग से परे जाने की इच्छा से, आपके चरणकमलों की पूजा प्रातः, दोपहर तथा संध्या समय करते हैं। इस तरह वे आपके

चतुर्व्यूह रूप का ध्यान करते हैं। आपके चरणकमल उस प्रज्वलित अग्नि के तुल्य है, जो भौतिक इन्द्रिय-तृप्ति विषयक समस्त अशुभ इच्छाओं को भस्म कर देती है।

तात्पर्य : बद्धजीव भगवान् के दिव्य यश में केवल अटूट श्रद्धा रख कर अपने जीवन को शुद्ध कर सकता है। तो फिर उन देवताओं के अद्वितीय सौभाग्य के विषय में क्या कहा जा सकता है, जो भगवान् कृष्ण के चरणकमलों का साक्षात् दर्शन कर रहे थे? यद्यपि इस समय हम असंख्य भौतिक इच्छाओं से त्रस्त हैं, किन्तु ये इच्छाएँ क्षणिक हैं। यह नित्य जीव परम पुरुष भगवान् से प्रेममय सम्बन्ध की अनुभूति पाने के लिए है और भगवान् की शुद्ध भक्ति करने से जीव का हृदय पूरी तरह तुष्ट हो जाता है।

इस श्लोक में धूमकेतु शब्द ज्वलित पुच्छल तारे अथवा अग्नि का सूचक है, जो शिवजी का प्रतिनिधित्व करता है। शिवजी तमोगुण के स्वामी हैं और कृष्ण के चरणकमलों की उपमा धूमकेतु से दी गई है, जो शिव की शक्ति का प्रतीक है और जो हृदय के अज्ञान को विनष्ट करने वाला है। *सम-विभूतये* शब्द सूचित करता है कि शुद्ध भक्त भगवद्धाम जाते हैं और वैकुण्ठ का अमित आनन्द भोगते हैं। भगवान् कृष्ण के पास भोग के लिए प्रचुर ऐश्वर्यमयी साज-सामग्री है और जो मुक्तात्मा कृष्ण के धाम जाता है, उसे भगवान् की सेवा करने के लिए सारा ऐश्वर्य न्यौछावर कर दिया जाता है। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर के अनुसार इस श्लोक में व्यूहे शब्द तीन पुरुष-अवतारों—महाविष्णु, गर्भोदकशायी विष्णु तथा क्षीरोदकशायी विष्णु के साथ साथ वासुदेव का सूचक है। यदि हम वैज्ञानिक तरीके से यह समझ लें कि इस भौतिक जगत को उत्पन्न करने के लिए कृष्ण किस तरह अपना विस्तार करते हैं, तो हम तुरन्त अनुभव करेंगे कि प्रत्येक वस्तु कृष्ण की सम्पत्ति है और इस तरह अपने स्वार्थों के लिए दोहन करने की इच्छा से मुक्त हो सकेंगे। कृष्ण परमेश्वर हैं, सबों के स्वामी हैं तथा सारे ऐश्वर्य के आगार हैं। मनुष्य को प्रातः, दोपहर तथा संध्या के समय उनके चरणकमलों का स्मरण करना चाहिए। जो व्यक्ति कृष्ण का सदैव स्मरण करता है और उन्हें कभी नहीं भूलता, वह माया की पीत छाया के परे असली आनन्दमय जीवन का अनुभव प्राप्त करेगा।

यश्चिन्त्यते प्रयतपाणिभिरध्वराग्नौ

त्रय्या निरुक्तविधिनेश हविर्गृहीत्वा ।
 अध्यात्मयोग उत योगिभिरात्ममायां
 जिज्ञासुभिः परमभागवतैः परीष्टः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

यः—जो; चिन्त्यते—ध्यान किया जाता है; प्रयत-पाणिभिः—हाथ जोड़े हुए लोगों के द्वारा; अध्वर-अग्नौ—यज्ञ की अग्नि में;
 त्रय्या—तीनों वेदों (ऋग्वेद, यजुः तथा साम) के; निरुक्त—निरुक्त में दी हुई जानकारी; विधिना—विधि से; ईश—हे स्वामी;
 हविः—हवन करने के निमित्त घी; गृहीत्वा—लेकर; अध्यात्म-योगे—आत्मा की अनुभूति हेतु योग-पद्धति में; उत—भी;
 योगिभिः—योगियों द्वारा; आत्म-मायाम्—आपकी मोहने वाली माया के विषय में; जिज्ञासुभिः—जिज्ञासुओं द्वारा; परम-
 भागवतैः—अत्यन्त उन्नत हो चुके भक्तों द्वारा; परीष्टः—पूजित ।

जो लोग ऋग्वेद, यजुः तथा सामवेद में दी गई विधि के अनुसार यज्ञ की अग्नि में आहुति देते समय, वे आपके चरणकमलों का ध्यान करते हैं। इसी प्रकार योगीजन आपकी दिव्य योगशक्ति का ज्ञान प्राप्त करने की आशा से आपके चरणकमलों का ध्यान करते हैं और जो पूर्ण महाभागवत हैं, वे आपकी मायाशक्ति को पार करने की इच्छा से, आपके चरणकमलों की अच्छी तरह से पूजा करते हैं।

तात्पर्य : इस श्लोक में आत्म-मायां जिज्ञासुभिः शब्द महत्त्वपूर्ण हैं। योगीजन (अध्यात्मयोग उत योगिभिः) भगवान् की योगशक्तियों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए इच्छुक रहते हैं, जबकि शुद्ध भक्तगण (परमभागवतैः) माया के परे जाना चाहते हैं, जिससे शुद्ध प्रेमाभाव से वे भगवान् कृष्ण के चरणकमलों की सेवा कर सकें। प्रत्येक दशा में, हर व्यक्ति भगवान् की शक्ति में रुचि दिखाता है। नास्तिक विज्ञानीजन भी भगवान् की बहिरंगा शक्ति से मोहित होते हैं और निपट इन्द्रिय-लोभी अपने भौतिक शरीर द्वारा आकृष्ट होते हैं, जो कि आत्ममाया है अर्थात् भगवान् की शक्ति का अंश है। यद्यपि भगवान् की सारी शक्तियाँ गुणात्मक दृष्टि से भगवान् से और फलतः एक दूसरे से एकाकार हैं, फिर भी आनन्दमय आध्यात्मिक शक्ति सर्वोपरि है, क्योंकि नित्य आनन्द स्तर पर यह भगवान् तथा शुद्ध जीव के मध्य सम्बन्ध स्थापित करती है। प्रत्येक जीव मूलतः भगवान् का प्रेमी सेवक है और भगवान् की आध्यात्मिक शक्ति जीव को उसके शुद्ध स्वाभाविक पद पर लाती है, जो माया के परे है।

हमारे स्वप्न तथा जाग्रत अनुभव, दोनों ही मन के कार्य हैं, फिर भी जाग्रत अवस्था में हम जितने कार्य करते हैं, वे अधिक महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि वे हमें अपने स्थायी पद पर स्थापित कराने वाले हैं। इसी तरह, जीव हर क्षण भगवान् की अनन्त शक्तियों में किसी एक का अनुभव करता रहता है। तथापि

दिव्य शक्ति का अनुभव अधिक महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इससे जीव अपने नित्य स्वाभाविक पद पर भगवान् के श्रद्धालु सेवक के रूप में स्थापित हो जाता है।

देवतागण भगवान् के चरणकमलों की महिमा का वर्णन कर रहे हैं, क्योंकि वे लोग उन चरणों के सम्पर्क से शुद्ध होने के लिए उत्सुक हैं (*तवाङ्घ्ररस्माकमशुभाशयधूमकेतु स्यात्*)। जब कोई निष्ठावान् भक्त भगवान् के चरणकमलों की शरण पाना चाहता है, तो भगवान् उसे अपने धाम ले जाते हैं, जिस प्रकार देवतागण भगवान् कृष्ण की व्यवस्था द्वारा द्वारका लाये गये थे।

पर्युष्टया तव विभो वनमालयेयं

संस्पर्धिनी भगवती प्रतिपत्नीवच्छ्रीः ।

यः सुप्रणीतममुयार्हणमाददन्नो

भूयात्सदाङ्घ्रिरशुभाशयधूमकेतुः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

पर्युष्टया—मुरझाई हुई, बासी; तव—तुम्हारा; विभो—सर्वशक्तिमान् भगवान्; वनमालया—फूल की माला से; इयम्—वह; संस्पर्धिनी—स्पर्धा करती हुई; भगवती—भगवान् की स्त्री; प्रति-पत्नी-वत्—ईर्ष्यालु सौत की तरह; श्रीः—लक्ष्मीदेवी; यः—जो भगवान् (आप); सु-प्रणीतम्—जिससे भलीभाँति सम्पन्न हो सके; अमुया—इससे; अहंणम्—भेंट; आददन्—स्वीकार करते हुए; नः—हमारा; भूयात्—हो; सदा—सदैव; अङ्घ्रिः—चरणकमल; अशुभ-आशय—हमारी शुद्ध इच्छाओं की; धूम-केतुः—विनाश की अग्नि।

हे सर्वशक्तिमान्, आप अपने सेवकों के प्रति इतने दयालु हैं कि आपने उस मुरझाई हुई (बासी) फूलमाला को स्वीकार कर लिया है, जिसे हमने आपके वक्षस्थल पर चढ़ाया था। चूँकि लक्ष्मी देवी आपके दिव्य वक्षस्थल पर वास करती हैं, इसलिए निस्सन्देह वे हमारी भेंटों को उसी स्थान पर अर्पित करते देखकर उसी तरह ईर्ष्या करेंगी, जिस तरह एक सौत करती है। फिर भी आप इतने दयालु हैं कि आप अपनी नित्य संगिनी लक्ष्मी देवी की परवाह न करते हुए हमारी भेंट को सर्वोत्तम पूजा मान कर ग्रहण करते हैं। हे दयालु प्रभु, आपके चरणकमल हमारे हृदयों की अशुभ कामनाओं को भस्म करने के लिए प्रज्वलित अग्नि का कार्य करें।

तात्पर्य : भगवद्गीता (९.२६) में कहा गया है—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।

तदहं भक्त्युपहतम अश्नामि प्रयतात्मनः ॥

भगवान् कृष्ण अपने प्रिय भक्त द्वारा चढ़ाई गई तुच्छ से तुच्छ भेंट को कृतज्ञता से तथा प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करते हैं। भगवान् कृष्ण अपने शुद्ध भक्तों के प्रेम द्वारा उसी तरह से जीत लिए जाते हैं, जिस तरह अपनी प्रिय सन्तान द्वारा दी गई तुच्छ से तुच्छ भेंट से पिता जीत लिया जाता है। अध्यात्मवादी जब तक देहात्म बुद्धि को पूरी तरह त्याग नहीं देता, तब तक वह भगवान् को ऐसी प्रेममयी भेंट चढ़ा नहीं सकता। कृष्ण को ध्यानयोग उतना प्रिय नहीं है, जितना कि भक्तियोग, क्योंकि ध्यान में योगी योगशक्ति प्राप्त करके अपनी तुष्टि करने का प्रयास करता है (भगवान् की नहीं)। इसी तरह भगवान् से भौतिक लाभ प्राप्त करने की इच्छा से सामान्य लोग मन्दिरों, मसजिदों तथा गिरजाघरों में ईश्वर को पूजते हैं। किन्तु जो व्यक्ति वास्तविक आध्यात्मिक सिद्धि चाहता है, उसे सदैव भगवान् की महिमा का कीर्तन एवं श्रवण करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। ऐसा भक्तिमय उत्साह भगवत्प्रेम से प्रेरित होता है और किसी भी स्वार्थपूर्ण आशा से रहित होता है।

भगवान् इतने दयालु हैं कि वे अपनी नित्य संगिनी लक्ष्मी को भी भूल जाते हैं और अपने दीन भक्त को वरीयता प्रदान करते हैं, जिस तरह कोई व्यक्ति अपनी पत्नी के प्रेमालिगन की उपेक्षा करते हुए पास आ रहे अपने प्रिय पुत्र की भेंट को स्वीकार करता है। श्रील जीव गोस्वामी इंगित करते हैं कि भगवान् द्वारा पहनी हुई माला कभी मुरझा नहीं सकती, क्योंकि भगवान् की सारी साज-सामग्री नित्य तथा ऐश्वर्यमयी है। इसी तरह लक्ष्मीजी में भौतिक ईर्ष्या भाव के उदय होने की कोई सम्भावना नहीं रहती, क्योंकि वे भी भगवान् कृष्ण की ही तरह दिव्य हैं। इसलिए देवताओं के वचनों को प्रगाढ़ भगवत्प्रेम से प्रेरित विनोद मानना चाहिए। देवताओं को लक्ष्मी का और इस तरह भगवान् कृष्ण का संरक्षण प्राप्त रहता है और भगवान् तथा उनकी संगिनी के प्रति अपने प्रेम-सम्बन्ध पर अटूट विश्वास होने से ही, वे इस तरह का विनोद कर रहे हैं।

केतुस्त्रिविक्रमयुतस्त्रिपतत्पताको

यस्ते भयाभयकरोऽसुरदेवचम्बोः ।

स्वर्गाय साधुषु खलेष्वितराय भूमन्

पदः पुनातु भगवन्भजतामघं नः ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

केतुः—झंडे का डंडा; त्रि-विक्रम—बलि महाराज को जीतने के लिए भरे गये तीन पग; यतः—अलंकृत; त्रि-पतत्—तीनों लोकों में गिरते हुए; पताकः—झंडा, जिस पर; यः—जो; ते—तुम्हारे (चरणकमल); भय-अभय—भय तथा निर्भीकता;

करः—करने वाले; असुर-देव—असुरों तथा देवताओं की; चम्बोः—सेनाओं के लिए; स्वर्गाय—स्वर्ग-प्राप्ति के लिए; साधुषु—साधु-देवताओं तथा भक्तों के बीच; खलेषु—दुष्ट; इतराय—इनसे विपरीतों के लिए; भूमन्—हे सर्वाधिक शक्तिशाली प्रभु; पादः—चरणकमल; पुनातु—पवित्र करें; भगवन्—हे भगवान्; भजताम्—आपकी पूजा में लगे हुए; अघम्—पापों को; नः—हमारे।

हे सर्वशक्तिमान प्रभु, आपने अपने त्रिविक्रम अवतार में ब्रह्माण्ड के कवच को तोड़ने के लिए अपना पैर ध्वज-दंड की तरह उठाया और पवित्र गंगा को तीन शाखाओं में तीनों लोकों में से होकर विजय-ध्वजा की भाँति बहने दिया। आपने अपने चरणकमलों के तीन बलशाली पगों से बलि महाराज को उनके विश्वव्यापी साम्राज्य सहित वश में कर लिया। आपके चरण असुरों में भय उत्पन्न करते हैं, जिससे वे नरक में भाग जाते हैं और आपके भक्तों में निर्भीकता उत्पन्न करके, उन्हें स्वर्ग-जीवन की सिद्धि प्रदान करते हैं। हे प्रभु, हम आपकी निष्ठापूर्वक पूजा करना चाह रहे हैं, इसलिए आपके चरणकमल कृपा करके हमारे सभी पापकर्मों से हमें मुक्त करें।

तात्पर्य : जैसाकि आठवें स्कंध में वर्णन हुआ है बलि महाराज द्वारा बलपूर्वक ग्रहण किये गये साम्राज्य को छीन कर देवताओं को देने के लिए भगवान् कृष्ण ने सुन्दर बौने ब्राह्मण अर्थात् वामन रूप धारण किया और अपना पाँव ब्रह्माण्ड की बाहरी सीमाओं की ओर बढ़ाया। जब भगवान् के पाँव से ब्रह्माण्ड की खोल में छेद हो गया, तो उसमें से गंगा नदी का जल बह निकला। यह दृश्य ऐसा लग रहा था, मानों कोई उठा हुआ दण्ड हो, जिसमें विजय-ध्वज फहरा रहा हो।

जैसा कि—*चरणं पवित्रं विततं पुराणं येन पूतस्तरति दुष्कृतानि*—“श्रुति-मंत्रों में कहे गये भगवान् के चरणकमल अत्यन्त पवित्र, सर्वव्यापक तथा प्राचीनतम हैं। जो इनके द्वारा पवित्र बना दिये जाते हैं, वे अपने पिछले सारे पापमय कर्मों को लॉँघ जाते हैं।” ब्रह्माण्ड-भर में भगवान् के चरणकमलों का पूजन अत्यन्त प्रसिद्ध है।

नस्योतगाव इव यस्य वशे भवन्ति
 ब्रह्मादयस्तनुभृतो मिथुरर्ह्यमानाः ।
 कालस्य ते प्रकृतिपूरुषयोः परस्य
 शं नस्तनोतु चरणः पुरुषोत्तमस्य ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

नसि—नाक से होकर; ओत—नथे हुए; गावः—बैल; इव—मानो; यस्य—जिसका; वशे—वश में; भवन्ति—होते हैं; ब्रह्मा-आदयः—ब्रह्मा तथा अन्य; तनु-भृतः—देहधारी जीव; मिथुः—परस्पर; अर्ह्यमानाः—संघर्ष करते हुए; कालस्य—समय की

शक्ति से; ते—तुम्हारा; प्रकृति-पुरुषयोः—प्रकृति तथा जीव दोनों; परस्य—जो उनसे परे है; शम्—दिव्य भाग्य; नः—हमारे लिए; तनोतु—फैला सकें; चरणः—चरणकमल; पुरुष-उत्तमस्य—भगवान् के।

आप पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं, दिव्य आत्मा हैं, जो भौतिक प्रकृति तथा इसके भोक्ता दोनों से श्रेष्ठ हैं। आपके चरणकमल हमें दिव्य आनन्द प्रदान करें। ब्रह्मा इत्यादि सारे बड़े बड़े देवता देहधारी जीव हैं। आपके काल के वश में एक-दूसरे से लड़ते-झगड़ते वे सब उन बैलों जैसे हैं, जिन्हें छिदे हुए उनकी नाक में पड़ी रस्सी (नथ) के द्वारा खींचा जाता है।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी कहते हैं—*ननु युद्धे देवासुरादयः परस्परं जयन्ति जयन्ते च किम् अहं तत्रेत्यत आहुः, नसीति। मिथुर्मिथोऽर्द्यमाना युद्धादिभिः पीडयमाना ब्रह्मादयोऽपि यस्य तव वशे भवन्ति न तु जये पराजये वा स्वतन्त्राः।* “देवताओं अथवा भगवद्भक्तों के मध्य तथा असुरों अथवा अभक्तों के मध्य अनवरत युद्धों में, हर पक्ष की कभी जीत होती है, तो कभी हार। कोई यह दलील दे सकता है कि इससे भगवान् का कोई वास्ता नहीं है, क्योंकि यह विरोधी जीवों की अन्योन्य क्रिया पर आधारित है। किन्तु हर जीव भगवान् के वश में होता है और जय तथा पराजय सदैव भगवान् के हाथ में है।” इससे जीव की स्वतंत्र इच्छा का विरोध नहीं होता, क्योंकि जय तथा पराजय जीवों की योग्यता के अनुसार भगवान् द्वारा प्रदान किये जाते हैं। कानूनी युद्ध में कानूनी प्रणाली को छोड़ कर स्वतंत्र रूप से न तो मुद्दई न मुद्दालेह कार्य कर सकता है। न्यायालय में जय तथा पराजय का निर्णय न्यायाधीश द्वारा दिया जाता है, किन्तु यह न्यायाधीश निष्पक्ष भाव से कानून के अनुसार निर्णय देता है।

इसी तरह ईश्वर हमें हमारे पूर्वकर्मों के फल प्रदान करते रहते हैं। ईश्वर को नकारने के लिए भौतिकतावादी प्रायः यह तर्क देते हैं कि प्रायः निर्दोष लोग कष्ट भोगते हैं, जबकि अपवित्र धूर्त लोग जीवन का आनन्द भोगते हैं। किन्तु तथ्य यह है कि ईश्वर कोई वैसे मूर्ख नहीं है, जिस तरह कि ऐसे तर्क प्रस्तुत करने वाले भौतिकतावादी व्यक्ति होते हैं। ईश्वर हमारे कई पूर्वजन्मों को देख सकते हैं, इसलिए वे किसी को न केवल वर्तमान कर्मों का फल भोगने देते हैं, अपितु पूर्वकर्मों के फल को भी भोगने देते हैं। उदाहरणार्थ, कठिन परिश्रम करके मनुष्य धन का संग्रह कर सकता है। किन्तु यदि ऐसा धनी व्यक्ति अपना काम छोड़ कर निम्न-जीवन व्यतीत करने लगता है, तो उसका धन तुरन्त ही लुप्त नहीं होता। दूसरी ओर, ऐसा व्यक्ति जिसके भाग्य में धनी बनना है, वह अनुशासन तथा तप के साथ कठोर परिश्रम करता रह सकता है, फिर भी वह पाई-पाई का मोहताज हो सकता है। इसलिए ऊपर से

देखने पर कठिन परिश्रम करने वाला व्यक्ति धनहीन के रूप में और आलसी व्यक्ति धनवान दिख सकता है। इसी तरह भौतिकतावादी मूर्ख भूत, वर्तमान तथा भविष्य का ज्ञान न होने से भगवान् के पूर्ण न्याय को समझ नहीं पाता।

इस श्लोक में कृष्ण की नियंत्रण शक्ति को बताने के लिए दिया गया उदाहरण उपयुक्त है। यद्यपि बैल अत्यन्त शक्तिशाली होता है, किन्तु उसे उसकी बिन्धी नाक में रस्सी डाल कर आसानी से वश में किया जा सकता है। इसी तरह बड़े से बड़े राजनीतिज्ञ, विद्वान, देवता भी सर्वशक्तिमान भगवान् द्वारा तुरन्त असह्य स्थिति में डाले जा सकते हैं। इसलिए देवतागण द्वारका में अपनी व्यापक राजनैतिक तथा बौद्धिक शक्तियाँ प्रदर्शित करने नहीं, अपितु भगवान् के चरणकमलों पर विनयपूर्वक शरण ग्रहण करने आये हैं।

अस्यासि हेतुरुदयस्थितिसंयमाना-

मव्यक्तजीवमहतामपि कालमाहुः ।

सोऽयं त्रिणाभिरखिलापचये प्रवृत्तः

कालो गभीररय उत्तमपुरुषस्त्वम् ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

अस्य—इस (ब्रह्माण्ड) का; असि—हो; हेतुः—कारण; उदय—सृष्टि; स्थिति—पालन; संयमानाम्—तथा संहार; अव्यक्त—अव्यक्त प्रकृति का; जीव—जीव; महताम्—तथा महत तत्त्व का; अपि—भी; कालम्—नियंत्रक काल; आहुः—कहलाते हो; सः अयम्—यही व्यक्ति; त्रि-णाभिः—तीन नाभियों वाला; अखिल—हर वस्तु के; अपचये—ह्रास में; प्रवृत्तः—लगा हुआ; कालः—काल, समय; गभीर—अदृश्य, गम्भीर; रयः—जिसकी गति; उत्तम-पुरुषः—भगवान्; त्वम्—तुम।

आप इस ब्रह्माण्ड के सृजन, पालन तथा संहार के कारण हैं। आप प्रकृति की स्थूल तथा सूक्ष्म दशाओं को नियमित करने वाले तथा हर जीव को अपने वश में करने वाले हैं। कालरूपी चक्र की तीन नाभियों के रूप में आप अपने गम्भीर कार्यों द्वारा सारी वस्तुओं का ह्रास करने वाले हैं और इस तरह आप पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं।

तात्पर्य : गभीररयः शब्द जिसका अर्थ “अबाध गति तथा शक्ति” है महत्त्वपूर्ण है। हम यह देखते हैं कि प्रकृति के नियमों के द्वारा सारी वस्तुएँ, यहाँ तक कि हमारे शरीर, क्रमशः क्षीण होते जाते हैं। यद्यपि हम इस वार्धक्य प्रक्रम के दीर्घगामी प्रभाव का अवलोकन करते हैं, किन्तु इस प्रक्रम को अनुभव नहीं कर पाते। उदाहरणार्थ, कोई यह अनुभव नहीं कर पाता कि उसके बाल या नाखून किस तरह बढ़ते हैं। हम उनकी वृद्धि के संचित प्रभाव को देखते हैं, किन्तु क्षण क्षण हमें उसका अनुभव

नहीं हो पाता। इसी तरह कोई भी धीरे धीरे तब तक क्षीण होता जाता है, जब तक ध्वस्त नहीं हो जाता। यद्यपि हम क्षण क्षण इसका अनुभव नहीं कर पाते किन्तु दीर्घ समय के पश्चात्, घर की भग्नावस्था को हम देख सकते हैं। दूसरे शब्दों में, हम वृद्धावस्था तथा भग्नावस्था के परिणामों का अनुभव कर सकते हैं, किन्तु ये किस तरह घटित होते हैं, वह अदृश्य रहता है। यह कालरूप भगवान् की अद्भुत शक्ति है।

त्रि-नाभिः शब्द सूचित करता है कि सूर्य की गति की ज्योतिष-सम्बन्धी गणना के अनुसार वर्ष को तीन भागों में बाँटा जा सकता है—ये हैं मेष, मिथुन, वृष तथा कर्क और सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक तथा धनु, मकर, कुम्भ, मीन।

उत्तम-पुरुष या पुरुषोत्तम शब्द की व्याख्या *भगवद्गीता* (१५.१८) में दी गई है—

यस्मात् क्षरमतीतोऽहम् अक्षरादपि चोत्तमः ।

अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥

“चूँकि मैं क्षर तथा अक्षर दोनों के परे हूँ और चूँकि मैं सर्वश्रेष्ठ हूँ, अतएव इस जगत में तथा वेदों में परम पुरुष के रूप में विख्यात हूँ।”

त्वत्तः पुमान्समधिगम्य ययास्य वीर्यं
धत्ते महान्तमिव गर्भममोघवीर्यः ।
सोऽयं तयानुगत आत्मन आण्डकोशं
हैमं ससर्ज बहिरावरणैरुपेतम् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

त्वत्तः—तुमसे; पुमान्—पुरुष-अवतार, महाविष्णु; समधिगम्य—प्राप्त करके; यया—जिससे; अस्य—इस सृष्टि का; वीर्यम्—बीज; धत्ते—स्थापित करता है; महान्तम्—महत् तत्त्व; इव गर्भम्—सामान्य भ्रूण (गर्भ) की तरह; अमोघ-वीर्यः—वह जिसका वीर्य नष्ट नहीं होता; सः अयम्—वही (महत् तत्त्व); तथा—प्रकृति के साथ; अनुगतः—मिला हुआ; आत्मनः—अपने से; आण्ड-कोशम्—ब्रह्माण्ड; हैमम्—सोने का; ससर्ज—उत्पन्न किया; बहिः—बाहर की ओर; आवरणैः—खोलों सहित; उपेतम्—प्रदत्त, समन्वित।

हे प्रभु, आदि पुरुष-अवतार महाविष्णु अपनी सर्जक शक्ति आपसे ही प्राप्त करते हैं। इस तरह अच्युत शक्ति से युक्त वे प्रकृति में वीर्य स्थापित करके महत् तत्त्व उत्पन्न करते हैं। तब भगवान् की शक्ति से समन्वित यह महत् तत्त्व अपने में से ब्रह्माण्ड का आदि सुनहला अंडा उत्पन्न करता है, जो भौतिक तत्त्वों के कई आवरणों (परतों) से ढका होता है।

तात्पर्य : पिछले श्लोकों में जीव तथा प्रकृति के सन्दर्भ में भगवान् की श्रेष्ठता स्थापित की जा चुकी है। इस श्लोक में स्पष्ट कहा गया है कि भगवान् कृष्ण महाविष्णु के उद्गम हैं और ये महाविष्णु अपनी सृजन शक्ति भगवान् कृष्ण से ही प्राप्त करते हैं। इसलिए यह निष्कर्ष निकालना कि कृष्ण विष्णु के अंश है, मूर्खतापूर्ण होगा। इस प्रसंग में ब्रह्मा आदि देवताओं के मत को अन्तिम मान लेना चाहिए।

तत्तस्थूषश्च जगतश्च भवानधीशो

यन्माययोत्थगुणविक्रिययोपनीतान् ।

अर्थाञ्जुषन्नपि हृषीकपते न लिप्तो

येऽन्ये स्वतः परिहृतादपि बिभ्यति स्म ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

तत्—इसलिए; तस्थूषः—प्रत्येक अचर वस्तु का; च—तथा; जगतः—चर; च—भी; भवान्—आप (हैं); अधीशः—चरम नियन्ता; यत्—क्योंकि; मायया—प्रकृति द्वारा; उत्थ—उठा हुआ; गुण—(प्रकृति के) गुणोंका; विक्रियया—विकार से (जीवों की इन्द्रियों के कर्म से); उपनीतान्—पास पास लाये गये; अर्थान्—इन्द्रिय-विषय; जुषन्—लिप्त रहकर; अपि—यद्यपि; हृषीक-पते—हे इन्द्रियों के स्वामी; न लिप्तः—आपको छू नहीं पाते; ये—जो; अन्ये—अन्य; स्वतः—अपने बल पर; परिहृतात्—के कारण; अपि—भी; बिभ्यति—डरते हैं; स्म—निस्सन्देह।

हे प्रभु, आप इस ब्रह्माण्ड के परम स्रष्टा हैं और समस्त चर तथा अचर जीवों के परम नियन्ता हैं। आप हृषीकेश अर्थात् सभी इन्द्रिय-विषयक कार्यों के परम नियन्ता हैं और आप कभी भी इस भौतिक सृष्टि के भीतर अनन्त इन्द्रिय-विषय-कार्यों के अधीक्षण के समय संदूषित या लिप्त नहीं होते। दूसरी ओर, अन्य जीव, यहाँ तक कि योगी तथा दार्शनिक भी उन भौतिक वस्तुओं का स्मरण करके विचलित तथा भयभीत रहते हैं केवल उन भौतिक पदार्थों को याद करके जिनका परित्याग प्रकाश की खोज करते समय उन्होंने त्याग दिया था।

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण प्रत्येक बद्धजीव के हृदय के भीतर हैं और इन्द्रिय-तृप्ति की खोज तथा अनुभव में हर जीव का मार्गदर्शन करते हैं। ऐसे कार्यों के निराशाजनक परिणाम बद्धजीव को आश्चस्त करते हैं कि वे भौतिक जीवन का परित्याग करके अपने हृदय के भीतर स्थित भगवान् की शरण में पुनः जाँय। भगवान् कृष्ण अपनी माया का आनन्द लेने वाले जीवों के व्यर्थ प्रयासों से कभी भी प्रभावित नहीं होते। ईश्वर के लिए भय या उत्पात की कोई सम्भावना नहीं है क्योंकि अंततः उनसे भिन्न कुछ भी नहीं है।

स्मायावलोकलवदर्शितभावहारि-

भ्रूमण्डलप्रहितसौरतमन्त्रशौण्डैः ।

पत्यस्तु षोडशसहस्रमनङ्गबाणै-

र्यस्येन्द्रियं विमथितुं करणैर्न विभ्यः ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

स्माय—मुसकान; अवलोक—चितवन का; लव—अंश द्वारा; दर्शित—दिखलाया हुआ; भाव—उनके विचार; हारि—मोहक; भ्रू-मण्डल—भौंहों के अर्धवृत्र द्वारा; प्रहित—भेजा गया; सौरत—दाम्पत्य प्रेम का; मन्त्र—सन्देश; शौण्डैः—प्रगल्भ; पत्यः—पत्नियाँ; तु—लेकिन; षोडश-सहस्रम्—सोलह हजार; अनङ्ग—कामदेव के; बाणैः—बाणों द्वारा; यस्य—जिसकी; इन्द्रियम्—इन्द्रियाँ; विमथितुम्—विक्षुब्ध करने के लिए; करणैः—अपनी सारी युक्तियों से; न विभ्यः—समर्थ नहीं थे।

हे प्रभु, आप सोलह हजार अत्यन्त सुन्दर राजसी पत्नियों के साथ रह रहे हैं। अपनी अत्यन्त लजीली तथा मुस्कान-भरी चितवन तथा सुन्दर धनुष-रूपी भौंहों से वे आपको अपने उत्सुक प्रणय का सन्देश भेजती हैं। किन्तु वे आपके मन तथा इन्द्रियों को विचलित करने में पूरी तरह असमर्थ रहती हैं।

तात्पर्य : पिछले श्लोक में स्पष्ट कहा जा चुका है कि कोई भौतिक वस्तु भगवान् की इन्द्रियों को आकृष्ट नहीं कर सकती। अब इस श्लोक में यह दिखलाया गया है कि भगवान् को अपनी आध्यात्मिक इन्द्रिय-तृप्ति करने की इच्छा भी नहीं है। कृष्ण अपने आप में पूर्ण हैं। वे समस्त आनन्द के आगार हैं और उन्हें किसी भौतिक या आध्यात्मिक वस्तु की लालसा नहीं रहती। यह तर्क दिया जा सकता है कि कृष्ण ने अपनी पत्नी सत्यभामा को प्रसन्न करने के लिए स्वर्ग से पारिजात पुष्प चुराया था और इस तरह वे अपनी प्रिय पत्नी के वशीभूत पति थे। किन्तु भले ही कृष्ण कभी कभी अपने भक्तों के प्रेम से विजित हो जाते हों, किन्तु वे सामान्य कामुक व्यक्ति की तरह भोगेच्छा से कभी प्रभावित नहीं होते। अभक्तगण भगवान् तथा उनके शुद्ध भक्तों के बीच प्रेमभावों के आदान-प्रदान को कभी भी नहीं समझ सकते। कृष्ण को हम उनके प्रति अपने प्रगाढ़ प्रेम द्वारा जीत सकते हैं और इस तरह शुद्ध भक्त भगवान् को अपने वश में कर लेते हैं। उदाहरणार्थ, वृन्दावन की प्रौढ़ गोपियाँ विभिन्न लय में ताली बजाकर कृष्ण को नचा सकती थीं और द्वारका में सत्यभामा ने कृष्ण को पत्नी-प्रेम के प्रमाणस्वरूप पारिजात पुष्प लाने का आदेश दिया था। षड् गोस्वामियों के प्रति लिखे गये गीत में श्रीनिवास आचार्य ने कहा है—*गोपीभावरसामृताब्धिलहरीकल्लोलमग्नौ मुहुः*—भगवान् तथा उनके शुद्ध भक्त के बीच का प्रेम दिव्य आनन्द का सागर है। किन्तु उसी के साथ ही कृष्ण आत्माराम हैं। कृष्ण ने ब्रजभूमि की अद्वितीय तरुण गोपियों का संग त्याग कर अपने चाचा अक्रूर के अनुरोध पर मथुरा के लिए प्रस्थान किया। इस

तरह न तो वृन्दावन की गोपियाँ, न ही द्वारका की रानियाँ कृष्ण के मन में भोग-भावना उत्पन्न कर पाईं। इस जगत में आनन्द का अर्थ सम्भोग (यौन) है। किन्तु यह संसारी यौन-आकर्षण वैकुण्ठ में कृष्ण तथा उनके संगियों के बीच के दिव्य प्रेम-व्यापार का विकृत प्रतिबिम्ब मात्र है। वृन्दावन की गोपियाँ देहाती ग्रामीण बालिकाएँ हैं, जबकि द्वारका की रानियाँ राजसी महिलाएँ हैं। किन्तु गोपियाँ तथा रानियाँ दोनों ही कृष्ण के प्रेम से अभिभूत रहती हैं। भगवान् के रूप में कृष्ण सौन्दर्य, बल, सम्पत्ति, यश, ज्ञान तथा परित्याग की पराकाष्ठा प्रदर्शित करते हैं और इस प्रकार वे अपने परम पद के द्वारा पूर्णतया तुष्ट रहते हैं। वे तो गोपियों तथा रानियों के निमित्त ही आध्यात्मिक प्रेम-व्यापार का आदान-प्रदान करते हैं। केवल मूर्ख ही यह सोचते हैं कि कृष्ण हम बेचारे बद्धजिवों की तरह अन्धे होकर विकृत मायावी सुखों के प्रति आकृष्ट रहते हैं। इसलिए सबों को चाहिए कि भगवान् के परम दिव्य पद को समझें और उनकी शरण में जायें। देवताओं के कहने का स्पष्ट आशय यही है।

विभ्व्यस्तवामृतकथोदवहास्त्रिलोक्याः

पादावनेजसरितः शमलानि हन्तुम् ।

आनुश्रवं श्रुतिभिरङ्घ्रिजमङ्गसङ्गै-

स्तीर्थद्वयं शुचिषदस्त उपस्पृशन्ति ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

विभ्व्यः—समर्थ हैं; तव—तुम्हारी; अमृत—अमृतमयी; कथा—कथाओं का; उद-वहाः—जल धारण करने वाली नदियाँ; त्रि-लोक्याः—तीनों लोकों की; पाद-अवने—आपके चरणकमलों को स्नान कराने से; ज—उत्पन्न; सरितः—नदियाँ; शमलानि—सारा दूषण; हन्तुम्—नष्ट करने के लिए; आनुश्रवम्—प्रामाणिक व्यक्ति से श्रवण-विधि से युक्त; श्रुतिभिः—कानों से; अङ्घ्रि-जम्—आपके चरणकमलों से निकली (पवित्र नदी से युक्त); अङ्ग-सङ्गैः—सीधे शारीरिक सम्पर्क से; तीर्थ-द्वयम्—ये दो प्रकार के तीर्थस्थान; शुचि-षदः—शुद्धि के लिए प्रयत्नशील; ते—तुम्हारे; उपस्पृशन्ति—साथ रहने के लिए पास आते हैं।

आपके विषय में वार्ता रूपी अमृतवाहिनी नदियाँ तथा आपके चरणकमलों के धोने से उत्पन्न पवित्र नदियाँ तीनों लोकों के सारे कल्मष को विनष्ट करने में समर्थ हैं। जो शुद्धि के लिए प्रयत्नशील रहते हैं, वे अपने कानों से सुनी हुई आपकी महिमा की पवित्र कथाओं का सान्निध्य पाते हैं और आपके चरणकमलों से निकलने वाली पवित्र नदियों से उनमें स्नान करके, सान्निध्य प्राप्त करते हैं।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर कहते हैं—*अनुश्रवं गुरोरुच्चारणमनुश्रूयन्ते*—मनुष्य को गुरु से सुनकर, कृष्ण के विषय में सुनना चाहिए। प्रामाणिक गुरु अपने शिष्य से भगवान् की लीलाओं,

शक्तियों तथा अवतारों का वर्णन करता है। यदि गुरु प्रामाणिक है और शिष्य निष्ठावान तथा आज्ञाकारी है, तो गुरु तथा शिष्य के मध्य सम्प्रेषण दोनों के लिए अमृत तुल्य है। सामान्य व्यक्ति भगवद्भक्तों द्वारा अनुभव किये जाने वाले विशेष आनन्द की कल्पना भी नहीं कर सकते। ऐसा अमृत तुल्य बोलना तथा सुनना बद्धजीव के हृदय के भीतर के सारे कल्मष को विनष्ट करता है, प्राथमिक कल्मष कृष्ण की सेवा किये बिना जीने की इच्छा है।

यहाँ पर वर्णित दूसरा अमृत *चरणामृत* है। भगवान् वामनदेव ने ब्रह्माण्ड के आवरण में पाद-प्रहार द्वारा छेद करके अपने चरणकमल को धोया, जिससे पवित्र गंगाजल उनके अँगूठे को धोता हुआ ब्रह्माण्ड में गिरा। इसी तरह यमुना नदी ने भी कृष्ण के चरणकमलों को पखारा, जब वे ५,००० वर्ष पूर्व इस लोक में प्रकट हुए थे। कृष्ण नित्य ही अपने संगियों तथा संगिनियों के साथ यमुना नदी में खेला करते थे, इसीलिए वह नदी भी *चरणामृत* है। इसलिए मनुष्य को गंगा या यमुना में स्नान करने का प्रयत्न करना चाहिए।

इस्कॉन मन्दिरों में हर प्रातःकाल कृष्ण के अर्चाविग्रह को स्नान कराया जाता है और इस तरह से पवित्र हुआ जल भी *चरणामृत* कहलाता है। श्रील प्रभुपाद ने अपने शिष्यों तथा अनुयायियों को प्रतिदिन प्रातःकाल अर्चाविग्रह के समक्ष जाने और अर्चाविग्रह के स्नान से प्राप्त *चरणामृत* की तीन बूँदें पीने की शिक्षा दी है।

इन सारी विधियों से मनुष्य अपने हृदय को शुद्ध बना सकता है और आध्यात्मिक आनन्द का आस्वादन कर सकता है। जब कोई आध्यात्मिक आनन्द के पद पर स्थित हो जाता है, तो उसे इस भौतिक जगत में दूसरा जन्म नहीं लेना पड़ता। इस श्लोक में *शुचिषदः* शब्द सार्थक है—मनुष्य को कृष्णभावनामृत के शुद्ध कार्यकलापों में अपने को लगाना चाहिए। मनुष्य को प्रामाणिक गुरु से भगवान् की सेवा करना सीखना चाहिए और गुरु के आदेशों को बिना सोचे-समझे मान लेना चाहिए। जो लोग इस जगत की मरीचिका से जुड़े हुए हैं, वे कभी कभी ईश-विषय में अपने विचार गढ़ लेते हैं। किन्तु प्रामाणिक गुरु से ही हम भगवान् तथा उनकी भक्ति के विषय में पूर्ण तथा शुद्ध ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। ऐसा ज्ञान श्रील प्रभुपाद के सभी ग्रंथों में पाया जा सकता है।

श्रीबादरायणिरुवाच

इत्यभिष्टूय विबुधैः सेशः शतधृतिर्हरिम् ।

अभ्यभाषत गोविन्दं प्रणम्याम्बरमाश्रितः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

श्री-बादरायणिः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; अभिष्टूय—प्रशंसा करके; विबुधैः—सारे देवताओं के साथ; स-ईशः—शिव समेत; शत-धृतिः—ब्रह्मा; हरिम्—परमेश्वर से; अभ्यभाषत—कहा; गोविन्दम्—गोविन्द को; प्रणम्य—प्रणाम करके; अम्बरम्—आकाश में; आश्रितः—स्थित।

श्री शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : इस तरह ब्रह्माजी शिव तथा अन्य देवताओं समेत भगवान् गोविन्द की स्तुति करने के बाद स्वयं आकाश में स्थित हो गये और उन्होंने भगवान् को इस प्रकार से सम्बोधित किया।

श्रीब्रह्मोवाच

भूमेर्भारावताराय पुरा विज्ञापितः प्रभो ।

त्वमस्माभिरशेषात्मन्तत्तथैवोपपादितम् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

श्री-ब्रह्मा उवाच—श्री ब्रह्मा ने कहा; भूमेः—पृथ्वी का; भार—बोझ; अवताराय—कम करने के लिए; पुरा—पहले; विज्ञापितः—प्रार्थना किये गये थे; प्रभो—हे प्रभु; त्वम्—तुम; अस्माभिः—हमारे द्वारा; अशेष-आत्मन्—हे सबों के असीम आत्मा; तत्—वह (प्रार्थना); तथा एव—जैसा हमने कहा, उसी तरह; उपपादितम्—पूरा हुआ।

ब्रह्मा ने कहा : हे प्रभु, इसके पूर्व हमने आपसे पृथ्वी का भार हटाने की प्रार्थना की थी। हे अनन्त भगवान्, हमारी वह प्रार्थना पूरी हुई है।

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण ने देवताओं से कहा होगा, “वस्तुतः तुम लोगों ने क्षीरोदकशायी विष्णु से अवतार लेने के लिए कहा था, तो फिर यह क्यों कह रहे हो कि मुझसे प्रार्थना की थी? मैं तो गोविन्द हूँ।” इसीलिए ब्रह्मा ने उन्हें अशेषात्मा कह कर सम्बोधित किया है, जिसका अर्थ है कि असीम भगवान्, जिनसे विष्णु के सारे स्वांश उद्भूत होते हैं। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर का ऐसा मत है।

धर्मश्च स्थापितः सत्सु सत्यसन्धेषु वै त्वया ।

कीर्तिश्च दिक्षु विक्षिप्ता सर्वलोकमलापहा ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

धर्मः—धर्म के सिद्धान्त; च—तथा; स्थापितः—स्थापित; सत्सु—पवित्र जनों में; सत्य-सन्धेषु—सत्य की खोज करने वालों में से; वै—निस्सन्देह; त्वया—तुम्हारे द्वारा; कीर्तिः—तुम्हारी कीर्ति; च—तथा; दिक्षु—सारी दिशाओं में; विक्षिप्ता—फैली हुई; सर्व-लोक—सारे लोकों के; मल—कल्मष; अपहा—दूर करने वाले।

हे प्रभु, आपने उन पवित्र लोगों के बीच धर्म की पुनर्स्थापना की है, जो सत्य से सदैव दृढ़तापूर्वक बँधे हुए हैं। आपने अपनी कीर्ति का भी सारे विश्व में वितरण किया है। इस तरह सारा संसार आपके विषय में श्रवण करके शुद्ध किया जा सकता है।

अवतीर्य यदोर्वंशे बिभ्रद्रूपमनुत्तमम् ।

कर्माण्युद्दामवृत्तानि हिताय जगतोऽकृथाः ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

अवतीर्य—अवतरित होकर; यदोः—राजा यदु के; वंशे—वंश में; बिभ्रत्—धारण करते हुए; रूपम्—दिव्य रूप; अनुत्तमम्—अद्वितीय; कर्माणि—कर्म; उद्दाम-वृत्तानि—उदार कार्यों से युक्त; हिताय—लाभ के लिए; जगतः—ब्रह्माण्ड के; अकृथाः—आपने सम्पन्न किया।

आपने यदुवंश में अवतार लेकर अपना अद्वितीय दिव्य रूप प्रकट किया है और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के कल्याण हेतु आपने उदार दिव्य कृत्य किये हैं।

यानि ते चरितानीश मनुष्याः साधवः कलौ ।

शृण्वन्तः कीर्तयन्तश्च तरिष्यन्त्यञ्जसा तमः ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

यानि—जिन; ते—तुम्हारे; चरितानि—लीलाओं को; ईश—हे परमेश्वर; मनुष्याः—मनुष्य; साधवः—सन्त-पुरुष; कलौ—कलियुग में; शृण्वन्तः—सुनते हुए; कीर्तयन्तः—कीर्तन करते हुए; च—तथा; तरिष्यन्ति—पार कर जायेंगे; अञ्जसा—सरलता से; तमः—अंधकार।

हे प्रभु, कलियुग में पवित्र तथा सन्त-पुरुष, जो आपके दिव्य कार्यों का श्रवण करते हैं और उनका यशोगान करते हैं, वे इस युग के अंधकार को सरलता से लाँघ जायेंगे।

तात्पर्य : दुर्भाग्यवश, कलियुग में बहुत से लोग प्रामाणिक वैदिक साहित्य के प्रति आकृष्ट नहीं होते। वे भगवान् की कीर्ति के श्रवण तथा कीर्तन की विधि को महत्त्व न देकर रेडियो तथा टेलीविजन की व्यर्थ तथा अंटशंट ध्वनियाँ सुनना चाहते हैं तथा अखबारों और पत्रिकाओं इत्यादि को पढ़ना चाहते हैं। वे किसी प्रामाणिक गुरु से कृष्ण के विषय में सुनने की अपेक्षा हर बात पर तब तक अपना मत व्यक्त करते रहते हैं, जब तक कि काल उन्हें घसीट नहीं ले जाता। वे भौतिक जगत के नश्वर तथा सीमित रूपों का अध्ययन करने के बाद, अधीर होकर इस निष्कर्ष पर जा पहुँचते हैं कि परम सत्य निराकार है। ऐसे लोग वस्तुतः कृष्ण की माया की पूजा करते हैं, जिसे बड़े से बड़े लोगों को लतियाने का अधिकार प्राप्त है। यदि इसके बदले में लोग प्रामाणिक स्रोतों से कृष्ण के विषय में सुनें, तो वे

अपने जीवन की सारी समस्याएँ आसानी से हल कर सकते हैं। कलियुग में लोग अनेक मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, आर्थिक, ऐतिहासिक, राजनैतिक तथा जीवन-सम्बन्धी समस्याओं से निरन्तर त्रस्त रहते हैं। किन्तु ये स्वप्नतुल्य समस्याएँ तुरन्त ही दूर हो जाती हैं, जब कोई व्यक्ति सच्चिदानन्द स्वरूप भगवान् की वास्तविकता के प्रति जागरूक हो उठता है। इस ब्रह्माण्ड में भगवान् इसीलिए प्रकट होते हैं, जिससे लोग उनके कार्यकलाप देख सकें, उनके बारे में सुन सकें और उनका यशोगान कर सकें। इस कलिकाल के कठिन युग में लोगों को इस अवसर का लाभ उठाना चाहिए।

यदुवंशोऽवतीर्णस्य भवतः पुरुषोत्तम ।

शरच्छतं व्यतीयाय पञ्चविंशाधिकं प्रभो ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

यदु-वंशे—यदुकुल में; अवतीर्णस्य—अवतरित; भवतः—आपका; पुरुष-उत्तम—हे परम पुरुष; शरत्-शतम्—एक सौ शरद ऋतुएँ; व्यतीयाय—व्यतीत करके; पञ्च-विंश—पच्चीस; अधिकम्—अधिक; प्रभो—हे प्रभु।

हे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्, हे प्रभु, आप यदुकुल में अवतरित हुए हैं और अपने भक्तों के साथ आपने एक सौ पच्चीस शरद ऋतुएँ बिताई हैं।

नाधुना तेऽखिलाधार देवकार्यावशेषितम् ।

कुलं च विप्रशापेन नष्टप्रायमभूदिदम् ॥ २६ ॥

ततः स्वधाम परमं विशस्व यदि मन्यसे ।

सलोकाल्लोकपालान्नः पाहि वैकुण्ठकिङ्करान् ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

न अधुना—और अधिक नहीं; ते—तुम्हारे लिए; अखिल-आधार—सभी वस्तुओं के आधार; देव-कार्य—देवताओं की ओर से किया गया कार्य; अवशेषितम्—शेष भाग; कुलम्—आपका वंश; च—तथा; विप्र-शापेन—ब्राह्मण के शाप से; नष्ट-प्रायम्—एक तरह से विनष्ट; अभूत्—हो गया है; इदम्—यह; ततः—इसलिए; स्व-धाम—अपने धाम; परमम्—परम; विशस्व—प्रवेश कीजिए; यदि—यदि; मन्यसे—आप ऐसा मानते हैं; स-लोकान्—सारे लोकों के निवासियों सहित; लोक-पालान्—लोकों के संरक्षक; नः—हमको; पाहि—रक्षा करते रहें; वैकुण्ठ—विष्णु का वैकुण्ठ; किङ्करान्—सेवकों को।

हे प्रभु, इस समय देवताओं की ओर से, आपको करने के लिए कुछ भी शेष नहीं रहा। आपने पहले ही अपने वंश को ब्राह्मण के शाप से उबार लिया है। हे प्रभु, आप सारी वस्तुओं के आधार हैं और यदि आप चाहें, तो अब वैकुण्ठ में अपने धाम को लौट जाय। साथ ही, हमारी विनती है कि आप सदैव हमारी रक्षा करते रहें। हम आपके विनीत दास हैं और आपकी ओर से

हम ब्रह्माण्ड का कार्यभार सँभाले हुए हैं। हमें अपने लोकों तथा अनुयायियों समेत आपके सतत संरक्षण की आवश्यकता है।

श्रीभगवानुवाच

अवधारितमेतन्मे यदात्थ विबुधेश्वर ।

कृतं वः कार्यमखिलं भूमेर्भारोऽवतारितः ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच— भगवान् ने कहा; अवधारितम्— समझा जाता है; एतत्— यह; मे— मेरे द्वारा; यत्— जो; आत्थ— आपने कहा है; विबुध-ईश्वर— हे देवताओं के नियन्ता, ब्रह्मा; कृतम्— पूर्ण हो चुका; वः— तुम्हारा; कार्यम्— कार्य; अखिलम्— सारा; भूमेः— पृथ्वी का; भारः— भार; अवतारितः— हटा दिया गया।

भगवान् ने कहा : हे देवताओं के अधीश ब्रह्मा, मैं तुम्हारी प्रार्थनाओं तथा अनुरोध को समझता हूँ। पृथ्वी का भार हटाकर मैं वह सारा कार्य सम्पन्न कर चुका, जिस कार्य की तुम लोगों से अपेक्षा थी।

तदिदं यादवकुलं वीर्यशौर्यश्रियोद्धतम् ।

लोकं जिघृक्षद्भुद्धं मे वेलयेव महार्णवः ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

तत् इदम्— इसी; यादव-कुलम्— यादव-वंश; वीर्य— उनकी शक्ति; शौर्य— साहस; श्रिया— तथा ऐश्वर्य से; उद्धतम्— प्रवर्धित; लोकम्— सारा जगत; जिघृक्षत्— निगल जाने की धमकी देते हुए; रुद्धम्— रोका हुआ; मे— मेरे द्वारा; वेलया— समुद्री तट द्वारा; इव— सदृश; महा-अर्णवः— महासागर।

वही यादव-कुल, जिसमें मैं प्रकट हुआ, ऐश्वर्य में, विशेष रूप से अपने शारीरिक बल तथा साहस में, इस हद तक बढ़ गया कि वे सारे जगत को ही निगल जाना चाहते थे। इसलिए मैंने उन्हें रोक दिया है, जिस तरह तट महासागर को रोके रहता है।

तात्पर्य : यदुवंश के वीर पुरुष इतने शक्तिशाली थे कि देवता तक उन्हें रोक नहीं सकते थे। यदुओं का उत्साह घातक युद्धों में विजय पाने के कारण अत्यधिक बढ़ चुका था और उनका वध नहीं किया जा सकता था। वे अपने शौर्य के कारण सारे संसार में अपना राज्य स्थापित करना चाहते थे, इसलिए भगवान् ने उन्हें रोका और पृथ्वी से उन्हें हटा लिया।

यद्यसंहृत्य दृप्तानां यदूनां विपुलं कुलम् ।

गन्तास्म्यनेन लोकोऽयमुद्वेलेन विनङ्क्ष्यति ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

यदि—यदि; असंहत्य—बिना हटाये; दृप्तानाम्—घमंड से चूर रहने वाले; यदूनाम्—यदुओं के; विपुलम्—विशाल; कुलम्—वंश को; गन्ता अस्मि—मैं जाता हूँ; अनेन—इस कारण से; लोकः—जगत; अयम्—यह; उद्वेलेन—उफान (यदुओं के) से; विनङ्क्ष्यति—विनष्ट हो जायेगा।

यदि मुझे यदुवंश के इन अतिशय घमंड से चूर रहने वाले सदस्यों को हटाए बिना यह संसार त्यागना पड़ा, तो इनके असीम विस्तार के उफान से सारा संसार विनष्ट हो जायेगा।

तात्पर्य : जिस तरह ज्वार की लहरें समुद्र तट की सीमा को लाँघ कर निर्दोष लोगों पर कहर ढा देती हैं, उसी प्रकार यह खतरा सन्निकट था कि बलशाली यदुवंश सामाजिक तथा राजनीतिक नियंत्रण की सारी सीमाओं के परे विस्तार कर जाय। यदुवंशी लोग भगवान् से पारिवारिक सम्बन्ध होने के कारण अत्यन्त गर्वित हो उठे थे। यद्यपि वे अत्यन्त धार्मिक तथा ब्राह्मण संस्कृति के भक्त थे, किन्तु भगवान् कृष्ण से सम्बन्धित होने के कारण वे गर्वित थे जैसाकि दृप्तानाम् शब्द से सूचित होता है। इतनी ही नहीं, कृष्ण के प्रति प्रगाढ़ प्रेम के कारण उनके वैकुण्ठ चले जाने के बाद इतना गहन वियोग, उन्हें सतायेगा कि वे उन्मत्त हो उठेंगे और पृथ्वी पर उनका भार असह्य हो उठेगा। किन्तु श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने इंगित किया है कि पृथ्वी कृष्ण के प्रति अनुरक्त होने से स्वयं कृष्ण के परिवार वालों को भार मानते हुए भी उनका स्वागत करेगी। तो भी कृष्ण इस भार को हटा देना चाहते थे। यहाँ यह उदाहरण दिया गया है कि नई नवेली दुलहन अपने पति को प्रसन्न करने के लिए तमाम स्वर्ण-आभूषणों से सज सकती है। यद्यपि ये आभूषण उस सुकुमार दुलहन के लिए पीड़ादायक भार बनते हैं और वह इस भार को अपने पति के सुख के लिए सहन करने को तैयार रहती है, किन्तु उसका प्रिय पति अपनी पत्नी की खुशी के लिए इस भार को हटा देता है। इसलिए भगवान् सावधानी के रूप में यदुवंश के भार को पृथ्वी से हटा देना चाह रहे थे, जैसे कहा जाता है कि थोड़ी-सी सावधानी बहुत बड़े उपचार का काम करती है।

इदानीं नाश आरब्धः कुलस्य द्विजशापजः ।

यास्यामि भवनं ब्रह्मन्नेतदन्ते तवानघ ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

इदानीम्—इस समय; नाशः—विनाश; आरब्धः—शुरू हो चुका है; कुलस्य—वंश का; द्विज-शाप-जः—ब्राह्मणों के शाप के कारण; यास्यामि—मैं जाऊँगा; भवनम्—आवास-स्थान को; ब्रह्मन्—हे ब्रह्मा; एतत्-अन्ते—इसके पश्चात्; तव—तुम्हारे; अनघ—हे निष्पाप।

अब ब्राह्मणों के शाप के कारण मेरे परिवार का विनाश पहले ही शुरू हो चुका है। हे निष्पाप ब्रह्मा, जब यह विनाश पूरा हो चुकेगा और मैं वैकुण्ठ जा रहा होऊँगा, तो मैं थोड़े समय के लिए तुम्हारे वास-स्थान पर अवश्य आऊँगा।

तात्पर्य : यदुवंश के सदस्य भगवान् के नित्य दास हैं, इसलिए श्रील जीव गोस्वामी ने *नाशः* शब्द की व्याख्या *निगूढायां द्वारकायां प्रवेशनम् इत्यर्थः*—यदुवंश के सदस्य वैकुण्ठ-लोक के गुह्य द्वारका में प्रविष्ट हुए, जो इस पृथ्वी पर प्रकट नहीं है। दूसरे शब्दों में, भगवान् का धाम द्वारका इस धरती पर प्रकट है, किन्तु जब पृथ्वी का द्वारका हटता है, तो वैकुण्ठ-लोक का नित्य द्वारका यथावत् बना रहता है। चूँकि यदुवंश के लोग भगवान् के नित्य संगी हैं, अतएव उनके विनाश का कोई प्रश्न नहीं है। केवल उनके प्राकट्य से सम्बन्धित हमारी बद्ध दृष्टि विनष्ट होती है। यही *नाशः* शब्द का अर्थ है।

श्रीशुक उवाच

इत्युक्तो लोकनाथेन स्वयम्भूः प्रणिपत्य तम् ।
सह देवगणैर्देवः स्वधाम समपद्यत ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; उक्तः—कहे जाने पर; लोक-नाथेन—ब्रह्माण्ड के स्वामी श्रीकृष्ण द्वारा; स्वयम्-भूः—स्वतः जन्मे ब्रह्मा ने; प्रणिपत्य—गिर कर नमस्कार करते हुए; तम्—उनको; सह—सहित; देव-गणैः—सारे देवताओं; देवः—ब्रह्माजी; स्व-धाम—अपने निजी धाम; समपद्यत—लौट गये।

श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा : ब्रह्माण्ड के स्वामी द्वारा ऐसा कहे जाने पर स्वयम्भू ब्रह्मा उनके चरणकमलों पर गिर पड़े और उन्हें नमस्कार किया। तब सारे देवताओं से घिरे हुए ब्रह्माजी अपने निजी धाम लौट गये।

अथ तस्यां महोत्पातान्द्वारवत्यां समुत्थितान् ।
विलोक्य भगवानाह यदुवृद्धान्समागतान् ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

अथ—तत्पश्चात्; तस्याम्—उस नगरी में; महा-उत्पातान्—भयंकर उपद्रवों को; द्वारवत्याम्—द्वारका में; समुत्थितान्—उठ खड़े हुए; विलोक्य—देखकर; भगवान्—भगवान् ने; आह—कहा; यदु-वृद्धान्—वृद्ध यदुवंशियों से; समागतान्—एकत्रित।

तत्पश्चात्, भगवान् ने देखा कि पवित्र नगरी द्वारका में भयंकर उत्पात हो रहे हैं। अतः एकत्रित वृद्ध यदुवंशियों से भगवान् इस प्रकार बोले।

तात्पर्य : मुनिवासनिवासे किम् घटेतारिष्टदर्शनम्—जहाँ पर सन्त लोग निवास कर रहे हैं, ऐसे पवित्र स्थानों में उत्पातों या अशुभ घटनाओं के घटने की कोई सम्भावना नहीं है। इस तरह द्वारका में हो रहे तथाकथित उत्पात भगवान् द्वारा अपने शुभ प्रयोजन हेतु कराये जा रहे थे।

श्रीभगवानुवाच

एते वै सुमहोत्पाता व्युत्तिष्ठन्तीह सर्वतः ।

शापश्च नः कुलस्यासीद्ब्राह्मणेभ्यो दुरत्ययः ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच— भगवान् ने कहा; एते—ये; वै—निस्सन्देह; सु-महा-उत्पाताः—अतीव बड़े उत्पात; व्युत्तिष्ठन्ति—उठ खड़े हो रहे हैं; इह—यहाँ; सर्वतः—सभी दिशाओं में; शापः—शाप; च—तथा; नः—हमारे; कुलस्य—परिवार का; आसीत्—होता रहा है; ब्राह्मणेभ्यः—ब्राह्मणों द्वारा; दुरत्ययः—निराकरण कर पाना (टाल सकना) असम्भव।

भगवान् ने कहा : ब्राह्मणों ने हमारे वंश को शाप दिया है। ऐसे शाप का परिहार असम्भव है, इसीलिए हमारे चारों ओर महान् उत्पात हो रहे हैं।

न वस्तव्यमिहास्माभिर्जिजीविषुभिरार्यकाः ।

प्रभासं सुमहत्पुण्यं यास्यामोऽद्यैव मा चिरम् ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

न वस्तव्यम्—नहीं निवास करना चाहिए; इह—यहाँ; अस्माभिः—हमारे द्वारा; जिजीविषुभिः—जीवित रहने की इच्छा से; आर्यकाः—हे शिष्ट लोगो; प्रभासम्—प्रभास नामक तीर्थस्थान को; सु-महत्—अत्यधिक; पुण्यम्—पवित्र; यास्यामः—हम चलें; अद्य—आज; एव—ही; मा चिरम्—बिना विलम्ब किये।

हे आदरणीय वरेषुजनो, यदि हम अपने प्राणों को अक्षत रखना चाहते हैं, तो अब और अधिक काल तक हमें इस स्थान पर नहीं रहना चाहिए। आज ही हम परम पवित्र स्थल प्रभास चलें। हमें तनिक भी विलम्ब नहीं करना चाहिए।

तात्पर्य : कृष्ण की लीलाओं में हाथ बँटाने के लिए अनेक देवताओं ने यदुकुल में जन्म लिया और वे भगवान् कृष्ण के संगियों के रूप में प्रकट हुए। जब भगवान् अपनी पार्थिव लीलाएँ समाप्त कर चुके, तो उन्होंने इन देवताओं को पुनः उनके विश्व-प्रशासन के कार्य पर वापस भेजना चाहा। हर देवता को अपने लोक में वापस जाना था। दिव्य नगरी द्वारका इतनी मंगलमयी है कि जो भी यहाँ, मरता है, वह तुरन्त ही भगवद्धाम वापस जाता है, किन्तु यदुवंश के अनेक देवता-सदस्य अभी भगवद्धाम जाने के लिए तैयार नहीं थे, इसलिए उन्हें द्वारका से बाहर जाकर मरना पड़ा। इस तरह भगवान् ने सामान्य जीव जैसा बनते हुए कहा, “हम सभी संकट में हैं। हम सबों को तुरन्त प्रभास चलना चाहिए।” इस

तरह कृष्ण ने अपनी योगमाया से यदुवंश के देवता-सदस्यों को मोहित कर लिया और उन्हें पवित्र स्थान प्रभास ले गये।

चूँकि द्वारका परम मंगल अर्थात् सर्वाधिक शुभ स्थान है, अतएव यहाँ पर कोई बनावटी अमंगल भी घटित नहीं हो सकता। वस्तुतः यदुवंश को हटाने की कृष्ण-लीला अंततः मंगलकारी है, किन्तु बाहरी तौर से यह अशुभ लगने वाली है, इसलिए यह द्वारका में नहीं घटित हुई, अपितु भगवान् कृष्ण यदुओं को द्वारका से बाहर ले गये। देवताओं को उनके लोकों में भेज कर भगवान् ने अपने मूल रूप में वैकुण्ठ वापस जाने और द्वारका नगरी में रहते जाने की योजना बनाई।

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने इस श्लोक के विषय में निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण टीका की है। प्रभास एक प्रसिद्ध पवित्र स्थान है, जो वेरवल रेलवे स्टेशन के पास जूनागढ़ क्षेत्र में स्थित है। श्रीमद्भागवत् के ग्यारहवें स्कंध के अध्याय ३० में लिखा हुआ है कि श्रीकृष्ण के वचन सुनकर यादवगण द्वारका की द्वीप नगरी से नावों द्वारा मुख्य स्थल पर गये और तब रथों में सवार होकर प्रभास की यात्रा की। प्रभास क्षेत्र में उन्होंने मैरेय नामक सुरा का पान किया और परस्पर लड़ने-झगड़ने लगे। इस युद्ध में लाठियों से वे एक-दूसरे पर प्रहार करने लगे और इस तरह उन्होंने अपने ही विनाश की लीला शुरू कर दी।

श्रीकृष्ण अपने चतुर्भुजी रूप में एक पीपल-वृक्ष के नीचे अपनी दाहिनी जाँघ पर अपना बायाँ पाँव रख कर बैठ गये। उनके पाँव का तलवा कोकनद (लाल कमल) जैसे लाल रंग का लग रहा था। जरा नामक बहेलिया प्रभास के समुद्र तट से यह देख रहा था। उसने उनके लाल पाँव को हिरन का मुख समझ कर उस पर तीर चला दिया।

जिस पीपल-वृक्ष के नीचे कृष्ण बैठे थे, अब वहाँ पर एक मन्दिर है। इस वृक्ष से एक मील की दूरी पर समुद्र तट पर वीर प्रभञ्जन मठ है और यह कहा जाता है कि इसी स्थान से जरा बहेलिये ने तीर साधा था।

महाभारत तात्पर्य निर्णय नामक ग्रंथ के अन्त में श्री मध्वाचार्यपाद ने मौषल लीला का तात्पर्य निम्नवत् लिखा है। भगवान् ने असुरों को मोहित करने तथा यह निश्चित करने के लिए कि उनके भक्तों के तथा ब्राह्मणों के वचन सत्य हों, उन्होंने मायारूपी देह उत्पन्न की, जिसमें जाकर तीर लगा। किन्तु

भगवान् के चतुर्भुजी रूप को जरा का तीर छू भी नहीं पाया। जरा वास्तव में भगवान् का भक्त भृगु ऋषि था। भूतकाल में भृगु मुनि के भगवान् विष्णु के वक्षस्थल पर लात मारी थी। इस घोर अपराध के फलस्वरूप भृगु को अधम शिकारी का जन्म लेना पड़ा। यद्यपि एक महान् भक्त ऐसा अधम जन्म खुशी खुशी स्वीकार कर लेता है, किन्तु भगवान् अपने भक्त को ऐसी अधम दशा में नहीं देख सकते। अतएव भगवान् ने ऐसी व्यवस्था की कि द्वापर युग के अन्त में, जब भगवान् अपनी प्रकट लीलाएँ समाप्त कर रहे थे, तो जरा बहेलिये के रूप में, उनका भक्त भृगु उनके मायारूपी शरीर पर तीर चलायेगा। इस तरह बहेलिया पश्चाताप करेगा और अपने अधम जन्म से छुटकारा पाकर भगवद्धाम वापस लौट जायेगा।

इसलिए भगवान् ने अपने भक्त भृगु को प्रसन्न करने तथा असुरों को बहकाने के लिए प्रभास में *मौषल लीला* प्रकट की, किन्तु यह समझना चाहिए कि यह एक मायावी लीला है। भगवान् कृष्ण ने इस धरा पर अपने आविर्भाव काल से कभी भी सामान्य मनुष्य के भौतिक गुणों का प्रदर्शन नहीं किया। वे अपनी माता के गर्भ से प्रकट नहीं हुए, प्रत्युत वे अपनी अचिन्त्य शक्ति से प्रसूति-गृह में अवतरित हुए थे। इसी तरह इस मर्त्य लोक का परित्याग करते समय असुरों को मोहग्रस्त करने के लिए मायावी रूप प्रकट किया। अभक्तों को मोहित करने के लिए उन्होंने अपनी माया से मायावी शरीर धारण किया, जबकि उसी के साथ साथ वे अपने *सच्चिदानन्द* शरीर में रहते रहे और इस तरह उन्होंने मायावी भौतिक शरीर का विनष्ट होना प्रकट किया। यह बहाना मूर्ख असुरों को भलीभाँति मोहित करता है, किन्तु श्रीकृष्ण का वास्तविक सच्चिदानन्द शरीर कभी मृत्यु को प्राप्त नहीं होता।

प्रभास क्षेत्र में ही एक अन्य पवित्र स्थान है, जिसका नाम भृगुतीर्थ है, जिसको परशुराम ने प्रकट किया था। वह स्थान जहाँ पर सरस्वती तथा हिरण्य नदियाँ समुद्र में मिलती हैं, भृगुतीर्थ कहलाता है और यहीं पर बहेलिए ने तीर चलाया था। *स्कन्द पुराण* के *प्रभास खण्ड* में प्रभासतीर्थ विषयक विस्तृत वर्णन है। प्रभासतीर्थ के सम्बन्ध में *महाभारत* में अनेक *फलश्रुतियाँ* भी दी हुई हैं। फलश्रुतियाँ वे शास्त्रीय कथन हैं, जो किसी पुण्यकर्म करने वाले को शुभ फल दिलाने का वचन देती हैं। अगले श्लोकों में भगवान् स्वयं ही प्रभास क्षेत्र जाने और वहाँ धार्मिक कृत्य करने से मिलने वाले विशेष लाभों को बतलाते हैं।

यत्र स्नात्वा दक्षशापाद्गृहीतो यक्ष्मणोदुराट् ।
विमुक्तः किल्बिषात्सद्यो भेजे भूयः कलोदयम् ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

यत्र—जहाँ; स्नात्वा—स्नान करके; दक्ष-शापात्—प्रजापति दक्ष के शाप से; गृहीतः—पकड़ा हुआ, पीड़ित; यक्ष्मणा—फेफड़ों के रोग यक्ष्मा से; उडु-राट्—तारों का राजा, चन्द्रमा; विमुक्तः—मुक्त हुआ; किल्बिषात्—अपने पापों से; सद्यः—तुरन्त; भेजे—धारण किया; भूयः—पुनः; कला—अपनी कलाओं की; उदयम्—अभिवृद्धि।

एक बार दक्ष के शाप के कारण चन्द्रमा यक्ष्मा से पीड़ित था, किन्तु प्रभास क्षेत्र में स्नान करने मात्र से चन्द्रमा अपने सारे पापों से तुरन्त विमुक्त हो गया और उसने अपनी कलाओं की अभिवृद्धि भी प्राप्त की।

वयं च तस्मिन्नाप्लुत्य तर्पयित्वा पितृन्सुरान् ।
भोजयित्वोषिजो विप्रान्नानागुणवतान्धसा ॥ ३७ ॥
तेषु दानानि पात्रेषु श्रद्धयोप्त्वा महान्ति वै ।
वृजिनानि तरिष्यामो दानैर्नौभिरिवार्णवम् ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

वयम्—हम; च—भी; तस्मिन्—उस स्थान पर; आप्लुत्य—स्नान करके; तर्पयित्वा—भेंट द्वारा तुष्ट करके, तर्पण करके; पितृन्—दिवंगत् पुरखों को; सुरान्—तथा देवताओं को; भोजयित्वा—भोजन कराकर; उषिजः—पूज्य; विप्रान्—ब्राह्मणों को; नाना—विविध; गुण-वता—स्वाद वाले; अन्धसा—भोजन से; तेषु—उन (ब्राह्मणों) में; दानानि—दान, भेंटें; पात्रेषु—दान के योग्य व्यक्ति; श्रद्धया—श्रद्धापूर्वक; उप्त्वा—बोकर (उन्हें भेंट करके); महान्ति—महान्; वै—निस्सन्देह; वृजिनानि—संकट; तरिष्यामः—हम लाँघ सकेंगे; दानैः—अपने दान से; नौभिः—नावों से; इव—जैसे; अर्णवम्—समुद्र को।

प्रभास क्षेत्र में स्नान करने, वहाँ पर पितरों तथा देवताओं को प्रसन्न करने के लिए बलि देने, पूज्य ब्राह्मणों को नाना प्रकार के स्वादिष्ट व्यंजन खिलाने तथा उन्हें ही दान का योग्य पात्र मान कर पर्याप्त दान देने से, हम निश्चय ही इन भीषण संकटों को पार कर सकेंगे, जिस तरह मनुष्य किसी उपयुक्त नाव में चढ़ कर महासागर को पार कर सकता है।

श्रीशुक उवाच

एवं भगवतादिष्टा यादवाः कुरुनन्दन ।
गन्तुं कृतधियस्तीर्थं स्यन्दनान्समयूयुजन् ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस प्रकार; भगवता—भगवान् द्वारा; आदिष्टाः—आदेश दिये गये; यादवाः—यादवगण; कुरु-नन्दन—हे कुरुओं के प्रिय; गन्तुम्—जाने के लिए; कृत-धियः—मन में संकल्प करके; तीर्थम्—पवित्र स्थान को; स्यन्दनान्—अपने रथों में; समयूयुजन्—घोड़े जोत दिये।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे कुरुनन्दन, इस तरह भगवान् द्वारा आदेश दिये जाने पर यादवों ने उस प्रभास क्षेत्र नामक पवित्र स्थान को जाने का निश्चय किया और उन्होंने अपने अपने रथों में घोड़े जोत दिये।

तन्निरिक्ष्योद्धवो राजन्श्रुत्वा भगवतोदितम् ।
दृष्टारिष्टानि घोरानि नित्यं कृष्णमनुव्रतः ॥ ४० ॥
विविक्त उपसङ्गम्य जगतामीश्वरेश्वरम् ।
प्रणम्य शिरसा पादौ प्राञ्जलिस्तमभाषत ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

तत्—वह; निरीक्ष्य—देखकर; उद्धवः—उद्धव; राजन्—हे राजा; श्रुत्वा—सुनकर; भगवता—भगवान् द्वारा; उदितम्—कहा हुआ; दृष्टा—देखकर; अरिष्टानि—अपशकुनों को; घोरानि—भयानक; नित्यम्—सदैव; कृष्णम्—भगवान् कृष्ण का; अनुव्रतः—श्रद्धालु अनुयायी; विविक्ते—एकान्त में; उपसङ्गम्य—पास जाकर; जगताम्—ब्रह्माण्ड के समस्त चर प्राणियों के; ईश्वर—नियन्ता के; ईश्वरम्—परम नियन्ता को; प्रणम्य—प्रणाम करके; शिरसा—सिर के बल; पादौ—उनके चरणों पर; प्राञ्जलिः—विनती के लिए हाथ जोड़े; तम्—उनसे; अभाषत—बोले।

हे राजन्, उद्धव भगवान् कृष्ण के सदा से ही श्रद्धावान अनुयायी थे। यादवों के कूच को अत्यन्त निकट देखकर, उनसे भगवान् के आदेशों को सुनकर तथा भयावने अपशकुनों को ध्यान में रखते हुए, वे एकान्त स्थान में भगवान् के पास गये। उन्होंने ब्रह्माण्ड के परम नियन्ता के चरणकमलों पर अपना शीश झुकाया और हाथ जोड़ कर उनसे इस प्रकार बोले।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी के अनुसार भगवान् के निजी धाम में कोई वास्तविक उत्पात नहीं हो सकता। द्वारका में हो रहे महान् उत्पात वास्तव में बाह्य प्रदर्शन थे, जिन्हें भगवान् ने अपनी लीला को सुलभ करने के लिए उत्पन्न किया था। हम मान्य आचार्यों से सुन कर ही कृष्ण की लीलाएँ समझ सकते हैं। कृष्ण कोई संसारी ऐतिहासिक पुरुष नहीं हैं और उनके कार्यकलापों को भौतिक तर्क की क्षुद्र सीमाओं में सीमित नहीं रखा जा सकता। भगवान् कृष्ण की लीलाएँ उनकी अचिन्त्य शक्ति का प्रदर्शन हैं, जो अंध बद्ध आत्माओं तथा उनके क्षुद्र भौतिक तर्क से परे उच्चतर आध्यात्मिक नियमों के अनुसार कार्य करती हैं।

श्रीउद्धव उवाच

देवदेवेश योगेश पुण्यश्रवणकीर्तन ।
संहृत्यैतत्कुलं नूनं लोकं सन्त्यक्ष्यते भवान् ।

विप्रशापं समर्थोऽपि प्रत्यहन्न यदीश्वरः ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

श्री-उद्धवः उवाच—श्री उद्धव ने कहा; देव-देव—देवताओं में सबसे महान् के; ईश—हे परम ईश्वर; योग-ईश—हे समस्त योगशक्ति के स्वामी; पुण्य—जो पवित्र हैं; श्रवण-कीर्तन—जिसकी महिमा का श्रवण तथा कीर्तन कर रहे आप; संहृत्य—समेट कर; एतत्—इस; कुलम्—वंश को; नूनम्—ऐसा नहीं है; लोकम्—यह जगत; सन्त्यक्ष्यते—सदा के लिए त्यागने वाले हैं; भवान्—आप; विप्र-शापम्—ब्राह्मणों का शाप; समर्थः—सक्षम; अपि—यद्यपि; प्रत्यहन् न—तुमने मिटाया नहीं; यत्—क्योंकि; ईश्वरः—थे सुप्रेमे लोर्द.

श्री उद्धव ने कहा : हे प्रभु, हे देवों के परम ईश्वर, आपकी दिव्य महिमा का श्रवण और कीर्तन करने से ही असली दया आती है। हे प्रभु, ऐसा लगता है कि अब आप अपने वंश को समेट लेंगे और आप इस ब्रह्माण्ड में अपनी लीलाएँ भी बन्द कर देंगे। आप समस्त माया-शक्ति के परम नियन्ता और स्वामी हैं। यद्यपि आप अपने वंश को दिये गये ब्राह्मणों के शाप को मिटाने में पूर्णतया समर्थ हैं, किन्तु आप ऐसा नहीं कर रहे हैं और आपका तिरोधान सन्निकट है।

तात्पर्य : जैसाकि पहले कहा जा चुका है, कृष्ण के वंश को कभी विनष्ट नहीं किया जा सकता, अतएव संहृत्य का अर्थ है कि वे इस भौतिक संसार से प्रयाण करते समय यादवों को अपने साथ लेते जा रहे हैं। किन्तु सामान्य अप्रबुद्ध लोगों की दृष्टि में यदुवंश का समेटा जाना, उसका विनाश लग रहा है। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने उद्धव के कथन की बहुत ही उत्तम व्याख्या की है, जो इस प्रकार है—

कृष्ण को देवदेव कहा गया है, क्योंकि उन्होंने इस ब्रह्माण्ड में अवतार लेकर देवताओं की सारी समस्याओं का कुशलतापूर्वक समाधान कर दिया। भगवान् ने संसार को असुरों से विहीन कर दिया और अपने भक्तों तथा धर्म दोनों को ही दृढ़तापूर्वक स्थापित किया। यहाँ पर भगवान् कृष्ण को योगेश कहा गया है, क्योंकि उन्होंने न केवल देवताओं की ओर से सारे कार्य सम्पन्न किये, अपितु अपने शुद्ध भक्तों के आनन्द हेतु दिव्य गुणों तथा भावों से पूर्ण अपना सुन्दर दिव्य स्वरूप भी प्रकट किया। कृष्ण को पुण्यश्रवणकीर्तन कहा गया है, क्योंकि जब उन्होंने अपनी अन्तरंगा शक्ति द्वारा मनुष्य जैसे कार्यों का प्रदर्शन किया, तो उन्होंने अपनी लीलाओं के विषय में असंख्य वैदिक शास्त्रों के लिखे जाने के लिए प्रोत्साहित किया। इस तरह भविष्य में उत्पन्न होने वाले हम-जैसे लोग भगवान् के कार्यकलापों के विषय में सुन सकेंगे और भगवद्धाम वापस जा सकेंगे।

अपने सारे भक्तों, यहाँ तक कि जो आगे उत्पन्न होंगे, उन सबके दिव्य आनन्द तथा मोक्ष का पूरा पूरा प्रबन्ध करके कृष्ण ने निश्चय किया कि अब उनके लिए इस भौतिक जगत को छोड़ने का समय आ गया है। उद्धव भगवान् की इच्छा को समझ गये, अतः कृष्ण से बोले, “आपने यादवों को प्रभास क्षेत्र में स्नान करके ब्राह्मणों के शाप को मिटाने के लिए आदेश दे दिया है, किन्तु पवित्र स्थान में स्नान करना मात्र आप भगवान् के प्रत्यक्ष दर्शन करने की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण कैसे हो सकता है? चूँकि सारे यादव आपके दिव्य स्वरूप का सदैव दर्शन करते हैं और आप परमेश्वर हैं, तो फिर तथाकथित पवित्र स्थान में उनके स्नान करने से क्या लाभ है? अतएव स्पष्ट है कि आपका कोई अन्य प्रयोजन है। यदि आपकी मंशा शाप को मिटाने की होती तो आपने इतना ही कहा होता, “यह शाप काम न करे।” और शाप का निराकरण हो गया होता। इसलिए आप इस ब्रह्माण्ड को छोड़ने की तैयारी कर रहे हैं और इसीलिए आपने इस शाप को मिटाया नहीं।”

नाहं तवाङ्घ्रिकमलं क्षणार्धमपि केशव ।

त्यक्तुं समुत्सहे नाथ स्वधाम नय मामपि ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; अहम्—मैं हूँ; तव—तुम्हारे; अङ्घ्रि-कमलम्—चरणकमल; क्षण—एक क्षण का; अर्धम्—आधा; अपि—भी; केशव—हे केशी असुर के मारने वाले; त्यक्तुम्—छोड़ पाना; समुत्सहे—सहन करने में समर्थ हूँ; नाथ—हे प्रभु; स्व-धाम—अपने निजी धाम; नय—ले चलिये; माम्—मुझको; अपि—भी ।

हे स्वामी, भगवान् कृष्ण, मैं आधे क्षण के लिए भी आपके चरणकमलों का विछोह सहन नहीं कर सकता। मेरी विनती है कि आप मुझे भी अपने साथ अपने धाम लेते चलें।

तात्पर्य : उद्धव समझ गये थे कि कृष्ण यदुवंश को समेटने जा रहे थे, इसीलिए उन्होंने उनसे प्रार्थना की कि वे उन्हें अपने धाम लेते जायें। उन्हें कृष्ण के निर्विशेष तेज में लीन होने की कोई कामना नहीं थी। बजाय इसके वे भगवान् के आध्यात्मिक धाम जाने और कृष्ण के सबसे प्रिय मित्र के रूप में सान्निध्य प्राप्त करने की चाह लिये हुए थे। कृष्ण तो भगवान् हैं और जो भी चाहें वे कर सकते हैं, किन्तु भक्तगण उनसे सेवा करने का अवसर प्रदान करने के लिए ही याचना करते हैं। यद्यपि भगवान् भौतिक जगत में अपने विभिन्न धामों को यथा वृन्दावन, द्वारका तथा मथुरा को प्रकट करते हैं और ये धाम वैकुण्ठ में अपने प्रतिरूपों से अभिन्न हैं, किन्तु बड़े-चढ़े भक्तगण भगवान् की सेवा करने की इच्छा से अभिभूत होने के कारण भगवान् के आदि आध्यात्मिक धाम को जाना चाहते हैं। जैसाकि

श्रीमद्भागवत के तीसरे स्कंध में भगवान् कपिल ने कहा है, शुद्ध भक्तों को मोक्ष की कोई अभिलाषा नहीं रहती। सेवा करने की अपनी उत्सुकतावश ही वे भगवान् से अपने समक्ष प्रकट होने के लिए गिड़गिड़ाते हैं। राधा तथा कृष्ण की सेवा करने की प्रगाढ़ उत्सुकता के कारण छहों गोस्वामी उनके नाम पुकारते हुए वृन्दावन के जंगलों में उन्हें ढूँढ़ा करते थे। इसी तरह उद्धव भगवान् से विनती कर रहे हैं कि वे उन्हें अपने धाम लेते जायें, जिससे भगवान् के चरणकमलों की उनकी सेवा में क्षण-भर का भी व्यवधान न आये।

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने इंगित किया है कि अपरिपक्व बद्धजीव भगवान् कृष्ण को ऐसा सामान्य जीवात्मा मानते हैं, जो भौतिक कार्यों में लगा रहता है, जिसके कारण वे अपने ही वंश को ब्राह्मणों के शाप से नहीं बचा पाये। उद्धव के कथन से ऐसे अभागे व्यक्तियों के कथन का संशोधन हो जाता है। भगवान् कृष्ण ने ही पुण्यात्माओं को ब्राह्मण परिवारों में जन्म लेने का वर दिया था और उन्होंने ही उन्हें शक्ति प्रदान की थी, जिससे वे उन्हीं के वंश को शाप दें। और तो और, भगवान् कृष्ण ने शाप को अक्षत रखा, यद्यपि वे उसका निराकरण करने में सक्षम थे। इसलिए आदि, मध्य तथा अन्त में, प्रत्यक्ष रूप से तथा अप्रत्यक्ष रूप से, भूत, वर्तमान तथा भविष्य में कृष्ण ही परम सत्य हैं और वे भौतिक मोह या अशक्तता से तनिक भी प्रभावित नहीं होते।

तव विक्रीडितं कृष्ण नृनां परममङ्गलम् ।

कर्णपीयूषमासाद्य त्यजन्त्यन्यस्पृहां जनाः ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ

तव—तुम्हारी; विक्रीडितम्—लीलाएँ; कृष्ण—हे कृष्ण; नृणाम्—मनुष्यों के लिए; परम-मङ्गलम्—अत्यन्त शुभ; कर्ण—कानों के लिए; पीयूषम्—अमृत; आसाद्य—आस्वादन करके; त्यजन्ति—त्याग देते हैं; अन्य—अन्य वस्तुओं के लिए; स्पृहाम्—उनकी इच्छाएँ; जनाः—व्यक्ति।

हे कृष्ण, आपकी लीलाएँ मनुष्य प्रजाति के लिए अतीव शुभ हैं और कानों के लिए मादक पेय तुल्य हैं। ऐसी लीलाओं का आस्वादन करने पर लोग अन्य वस्तुओं की इच्छाएँ भूल जाते हैं।

तात्पर्य : अन्य-स्पृहाम् अर्थात् “कृष्ण के अतिरिक्त अन्य वस्तुओं के लिए इच्छा” सूचक है पत्नी, सन्तान, धन इत्यादि के भोग की भौतिक इच्छा का। अन्ततः भौतिकतावादी व्यक्ति अपने निजी आराम तथा तुष्टि के लिए धार्मिक मोक्ष चाह सकता है, किन्तु ऐसी सारी इच्छाएँ संसारी हैं, क्योंकि आध्यात्मिक स्तर पर शुद्धात्मा केवल भगवान् की प्रसन्नता एवं भगवान् की सेवा के बारे में सोचता है।

अतएव शुद्ध भक्त क्षण-भर के लिए भी कृष्ण को नहीं त्याग सकता। हाँ, कृष्ण की प्रसन्नता के लिए, वह सारे ब्रह्माण्ड को त्याग सकता है।

शय्यासनाटनस्थानस्नानक्रीडाशनादिषु ।

कथं त्वां प्रियमात्मानं वयं भक्तास्त्यजेम हि ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

सय्या—; आसन—; अटन—; स्थान—; स्नान—; क्रीडा—; आसन—; आदिषु—; कथम्—; त्वाम्—; प्रियम्—; आत्मानम्—; वयम्—; भक्ताः—; त्यजेम—; हि—.

हे प्रभु, आप परमात्मा हैं इसलिए, आप हमें सर्वाधिक प्रिय हैं। हम सभी आपके भक्त हैं, तो भला हम किस तरह आपको त्याग सकते हैं या आपके बिना क्षण-भर भी रह सकते हैं? हम लेटते-बैठते, चलते, खड़े होते, नहाते, खेलते, खाते या अन्य कुछ करते आपकी ही सेवा में निरन्तर लगे रहते हैं।

तात्पर्य : मनुष्य को भगवान् कृष्ण की सेवा में निरन्तर लगे रहना चाहिए। कृष्ण के विषय में श्रवण करके तथा उनकी सेवा द्वारा हम उनसे पृथक् रूप में कुछ भी भोग करने का मोह त्याग सकते हैं। यदि हम इस तरह के सुनने तथा सेवा करने की उपेक्षा करते हैं, तो हमारे मन भगवान् की माया से मोहित हो जायेंगे; और इस जगत को कृष्ण से पृथक् देखने पर इस जगत को अपनी इन्द्रिय-तृप्ति के निमित्त स्थान मान बैठेंगे। यह निपट अज्ञान जीव को कष्ट के अतिरिक्त ला ही क्या सकता है?

त्वयोपभुक्तस्त्रगन्धवासोऽलङ्कारचर्चिताः ।

उच्छिष्टभोजिनो दासास्तव मायां जयेम हि ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

त्वया—तुम्हारे द्वारा; उपभुक्त—पहले भोगा हुआ; स्त्रक्—माला की; गन्ध—सुगन्ध; वासः—वस्त्र; अलङ्कार—तथा गहने; चर्चिताः—सज्जित; उच्छिष्ट—आपका जूठन; भोजिनः—खाते हुए; दासाः—दास; तव—आपके; मायाम्—माया को; जयेम—हम जीत लेंगे; हि—निस्सन्देह।

आपके द्वारा उपभोग की गई मालाओं, सुगन्धित तेलों, वस्त्रों तथा गहनों से अपने को सजाकर तथा आपका जूठन खाकर हम आपके दास निश्चय ही आपकी माया को जीत सकेंगे।

तात्पर्य : इस श्लोक से स्पष्ट है कि उद्धव माया से मोक्ष पाने के लिए भगवान् के पास नहीं आये हैं। कृष्ण के निजी विश्वस्त संगी होने से उद्धव निस्सन्देह पहले से पूर्णतया मुक्तात्मा थे। वे कृष्ण से इसलिए प्रार्थना कर रहे हैं, क्योंकि कृष्ण के बिना वे क्षण-भर भी रहने के विचार को नहीं सह सकते।

यह अनुभूति ईश-प्रेम कहलाती है। उद्धव ने कृष्ण को इस प्रकार सम्बोधित किया, “यदि आपकी माया हम पर आक्रमण करे भी तो हे प्रभु! हम उसे अपने शक्तिशाली हथियारों से आसानी से जीत लेंगे। ये हथियार हैं आपका जूठन, वस्त्र, गहने इत्यादि। दूसरे शब्दों में, हम कृष्ण-प्रसादम् से माया के ऊपर आसानी से विजय पा लेंगे—व्यर्थ के चिन्तन तथा मनोरथ से नहीं।

वातवसना य ऋषयः श्रमणा ऊर्ध्वमन्थिनः ।

ब्रह्माख्यं धाम ते यान्ति शान्ताः सन्न्यासीनोऽमलाः ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ

वात-वसनाः—दिगम्बर, नग्न; ये—जो हैं; ऋषयः—ऋषिगण; श्रमणाः—आध्यात्मिक अभ्यास के कट्टर अनुयायी; ऊर्ध्व-मन्थिनः—ऊर्ध्वरता, जिनका सुरक्षित वीर्य सिर तक चढ़ जाता है; ब्रह्म-आख्यम्—ब्रह्म के नाम से विख्यात; धाम—निर्विशेष दिव्य धाम; ते—वे; यान्ति—जाने के लिए; शान्ताः—शान्त; सन्न्यासिनः—सन्न्यासी लोग; अमलाः—पापरहित।

आध्यात्मिक अभ्यास में गम्भीरता से प्रयास करने वाले नग्न ऋषिगण, ऊर्ध्वरता, शान्त तथा

निष्पाप सन्न्यासी आध्यात्मिक धाम को प्राप्त करते हैं, जो ब्रह्म कहलाता है।

तात्पर्य : भगवद्गीता के बारहवें अध्याय में कहा गया है—
क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्—जो लोग निर्विशेष भगवान् में अनुरक्त हैं उन्हें ब्रह्म के नक्षत्र में निर्विशेष मुक्ति पाने के लिए कठिन तपस्या करनी पड़ती है। भागवत में भी कहा गया है—*आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः। पतन्त्यथोऽनाहतयुष्मदङ्घ्रयः। कृच्छ्रेणः*—योगीजन अत्यधिक संघर्ष तथा कष्ट द्वारा ब्रह्मज्योति तक ऊपर जा पाते हैं, किन्तु वे पुनः ज्योति से बाहर निकल कर भौतिक जगत में वापस गिर जाते हैं, क्योंकि वे भगवान् की शरण ग्रहण नहीं करते।

ईर्ष्यालु मूर्खजन भगवान् के “पितृत्व” का विरोध करते हैं, किन्तु ये मूर्ख अपना शरीर, मस्तिष्क या शक्ति उत्पन्न करने का न तो श्रेय ले सकते हैं, न ही वे वायु, वर्षा, वनस्पति, फल, सूर्य, चन्द्रमा इत्यादि के ही श्रेय का दावा कर सकते हैं। दूसरे शब्दों में, वे हर क्षण ईश्वर की दया पर पूरी तरह आश्रित रहते हैं, फिर भी वे अत्यन्त ढीढ़ होकर कहते हैं कि वे भगवान् की शरण में जाना स्वीकार नहीं कर सकते, क्योंकि वे आत्मनिर्भर हैं। वस्तुतः कुछ मोहग्रस्त जीव अपने को ईश्वर तक समझ बैठते हैं, किन्तु वे यह नहीं बतला सकते कि “ईश्वर” होकर भी उन्हें योग-पद्धति में नगण्य सफलता पाने के लिए कड़ी मेहनत क्यों करनी पड़ती है? इसीलिए उद्धव यह इंगित कर रहे हैं कि निर्विशेषवादियों तथा मध्यमवर्गियों से सर्वथा भिन्न शुद्ध भक्त माया को आसानी से पार कर जाते हैं,

क्योंकि वे कृष्ण के चरणकमलों में पूरी तरह से अनुरक्त रहते हैं। कृष्ण सदैव दिव्य हैं और जो उनके चरणकमलों में दृढ़तापूर्वक अनुरक्त रहता है, वह भी दिव्य होता है। कृष्ण की अहैतुकी कृपा लाखों-करोड़ों वर्षों के संघर्ष तथा श्रम करने से कहीं अधिक मूल्यवान है। मनुष्य को भगवान् की दया पाने का प्रयत्न करना चाहिए फिर तो आध्यात्मिक अनुभूति के मार्ग में हर वस्तु अत्यन्त सुगम हो जायेगी। इस युग में कृष्ण के पवित्र नाम का निरन्तर कीर्तन करके मनुष्य उनकी कृपा पा सकता है, जैसी कि शास्त्रों की संस्तुति है—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम् ।

कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥

(बृहन्नारदीय पुराण)

यदि कोई व्यक्ति नाम के प्रति अपराधों से बचते हुए कृष्ण के पवित्र नामों का निरन्तर कीर्तन करता है, तो उसे निश्चय ही उद्धव जैसा फल मिलेगा। उद्धव को तथाकथित ब्रह्म-साक्षात्कार में कोई रुचि नहीं थी, अपितु वे भगवान् के चन्द्र-मुख की सुन्दर मुसकान रूपी मादक अमृत को छक कर पीना चाहते थे।

वयं त्विह महायोगिन्भ्रमन्तः कर्मवर्त्मसु ।

त्वद्वार्तया तरिष्यामस्तावकैर्दुस्तरं तमः ॥ ४८ ॥

स्मरन्तः कीर्तयन्तस्ते कृतानि गदितानि च ।

गत्युत्तिमतेक्षणक्ष्वेलि यन्नृलोकविडम्बनम् ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

वयम्—हम; तु—दूसरी ओर; इह—इस जगत में; महा-योगिन्—हे महायोगी; भ्रमन्तः—घूमते हुए; कर्म-वर्त्मसु—भौतिक कर्म के मार्ग पर; त्वत्—तुम्हारा; वार्तया—कथाओं पर विचार-विमर्श द्वारा; तरिष्यामः—पार करेंगे; तावकैः—तुम्हारे भक्तों सहित; दुस्तरम्—दुर्लभ; तमः—अंधकार; स्मरन्तः कीर्तयन्तः—महिमा गान करते; ते—तुम्हारे; कृतानि—कार्यों को; गदितानि—शब्दों को; च—तथा; गति—चाल; उत्तिमत—मुसकान; ईक्षण—चितवन; क्ष्वेलि—तथा मोहक लीलाएँ; यत्—जो हैं; नृ-लोक—मानव समाज की; विडम्बनम्—नकल।

हे महायोगी, यद्यपि हम सकाम कर्म के मार्ग पर विचरण करने वाले बद्धजीव हैं, किन्तु हम आपके भक्तों की संगति में आपके विषय में सुन कर ही इस भौतिक जगत के अंधकार को पार कर जायेंगे। इस तरह आप जो भी अद्भुत कार्य करते हैं और अद्भुत बातें करते हैं, उनको हम सदैव स्मरण करते हैं और उनका यशोगान करते हैं। हम अत्यन्त भावपूर्ण होकर स्मरण करते हैं

कि आप अपने विश्वस्त सुमाधुर्य दाम्पत्य का भक्तों के साथ शृंगारिक लीलाओं तथा ऐसी यौवनपूर्ण लीलाओं में लगे हुए आप किस तरह निर्भीक होकर मुसकाते तथा विचरण करते हैं। हे प्रभु, आपकी प्रेममयी लीलाएँ इस भौतिक जगत के भीतर सामान्य लोगों के कार्यकलापों की ही तरह मोहित करने वाली हैं।

तात्पर्य : इस श्लोक में भ्रमन्तः कर्मवर्त्मसु कह कर उद्धव अपने को सकाम कर्मों में लगे बद्धजीव के रूप में प्रस्तुत करते हैं। तो भी उद्धव को पूर्ण विश्वास है कि वे माया को अवश्य ही लाँघ जायेंगे, क्योंकि उन्हें कृष्ण के यशस्वी कार्यों तथा शब्दों का कीर्तन करने तथा स्मरण करने की लत है। इसी तरह श्रील रूप गोस्वामी ने कहा है—

ईहा यस्य हरेर्दास्ये कर्मणा मनसा गिरा।

निखिलास्वप्यवस्थासु जीवन्मुक्तः स उच्यते ॥

भले ही बाहर से मनुष्य भौतिक जगत में लीन प्रतीत होते हुए यदि वह प्रतिदिन चौबीसों घंटे भगवान् कृष्ण की सेवा में लगा रहता है, तो उसे मुक्तात्मा माना जाता है। यहाँ पर उद्धव कहते हैं कि कृष्ण के नाम तथा लीलाओं का श्रवण तथा कीर्तन निश्चित रूप से नग्न योगी बनने तथा जंगल में नंगे बन्दर की तरह कामेच्छाओं का शिकार होने से अच्छा है। उद्धव कृष्ण से उनके सुदर्शन चक्र की दया की भीख चाहते हैं, जिसके तेज का प्रतिनिधित्व भगवान् की लीलाओं के स्मरण तथा कीर्तन की प्रक्रिया से होता है। जो व्यक्ति भगवान् के धाम के चिन्तन के अद्वितीय आनन्द में लीन रहता है, वह सारे शोक, मोह तथा भय से मुक्त हो जाता है। श्री उद्धव की यही संस्तुति है।

श्रीशुक उवाच

एवं विज्ञापितो राजन्भगवान्देवकीसुतः ।

एकान्तिनं प्रियं भृत्यमुद्धवं समभाषत ॥ ५० ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस तरह; विज्ञापितः—प्रार्थना किये जाने पर; राजन्—हे राजा; भगवान्—भगवान्; देवकी-सुतः—देवकी के पुत्र; एकान्तिनम्—एकान्त में; प्रियम्—प्रिय; भृत्यम्—दास; उद्धवम्—उद्धव से; समभाषत—बोले।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे राजा परीक्षित, इस तरह सम्बोधित किये जाने पर देवकी-पुत्र कृष्ण अपने प्रिय अनन्य दास उद्धव से गुह्य रूप में उत्तर देने लगे।

तात्पर्य : श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती के अनुसार सारे बद्धजीव अपनी चाल-ढाल, हँसी, कार्य तथा वचनों से अपने आपको इस भौतिक जगत से अधिकाधिक जकड़ते जाते हैं। किन्तु यदि वे भगवान् की लीलाओं के श्रवण तथा कीर्तन में अपने को लगायें, तो उन्हें बारम्बार जन्म-मृत्यु के बन्धन से मोक्ष मिल जाय। परम मोक्ष की यह विधि श्रीकृष्ण द्वारा अपने सर्वप्रिय भक्त श्री उद्धव को विस्तार से बतलाई जायेगी।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के ग्यारहवें स्कंध के अन्तर्गत “यदुवंश का प्रभास गमन” नामक छठे अध्याय के श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।